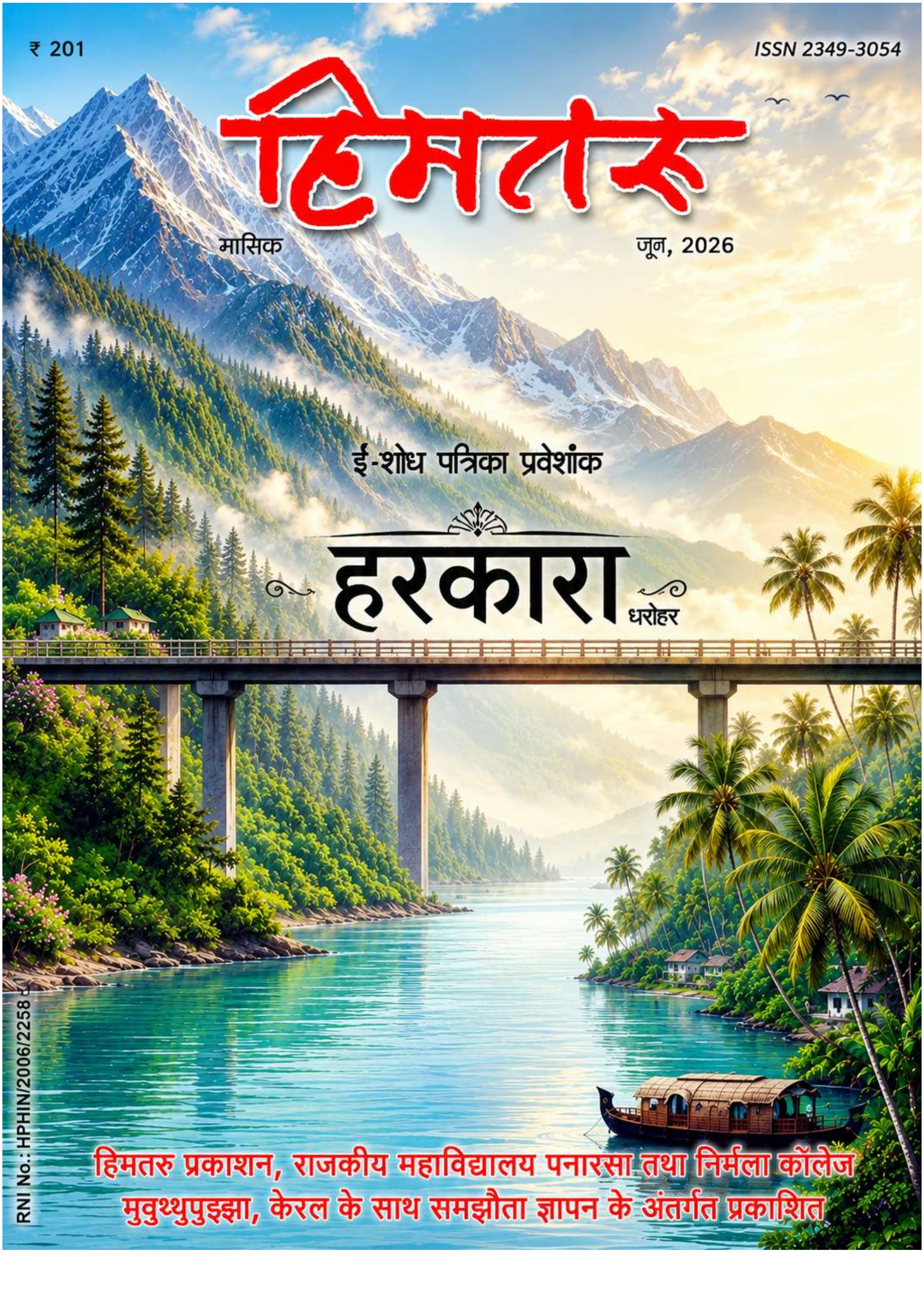
₹ 201
ISSN 2349-3054
हिमतरु
मासिक
जून, 2026
ई-शोध पत्रिका प्रवेशांक
हरकारा
धरोहर
RNI No.: HPHIN/2006/2258
हिमतरु प्रकाशन, राजकीय महाविद्यालय पनारसा तथा निर्मला कॉलेज
मुवुथ्थुपुइझा, केरल के साथ समझौता ज्ञापन के अंतर्गत प्रकाशित

हरकारा : एक परिचय

'हरकारा' केवल एक ई-जर्नल नहीं, बल्कि संवाद, संस्कृति, ज्ञान और शोध की उस जीवंत यात्रा का नाम है, जिसका उद्देश्य भारत की विविधताओं को एक साझा मंच पर लाना है। भारतीय परंपरा में 'हरकारा' उस संदेशवाहक को कहा जाता था जो दूरस्थ क्षेत्रों तक समाचार, विचार और सूचनाएँ पहुँचाने का कार्य करता था। इसी भाव को आत्मसात करते हुए यह ई-जर्नल हिमाचल प्रदेश और केरल के मध्य ज्ञान, संस्कृति, भाषा, साहित्य और शोध के आदान-प्रदान का माध्यम बनने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण पहल है। अपने नाम के अनुरूप यह विचारों का संवाहक, अनुभवों का दूत और विविध संस्कृतियों के मध्य संवाद का सेतु बनने का प्रयास करता है।

इस ई-जर्नल की परिकल्पना राजकीय महाविद्यालय पनारसा (हिमाचल प्रदेश), निर्मला कॉलेज (केरल) तथा हिमतरु प्रकाशन संस्थान के मध्य स्थापित शैक्षणिक सहयोग की भावना से उत्पन्न हुई है। यह विचार अचानक नहीं आया, बल्कि लगभग एक वर्ष तक चले चिंतन, विमर्श, योजना और संवाद का परिणाम है। लंबे समय तक यह एक कल्पना के रूप में मन और मस्तिष्क में आकार लेता रहा, जहाँ यह प्रश्न निरंतर उपस्थित था कि भारत जैसे बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक देश में विद्यार्थियों को एक-दूसरे की संस्कृति और जीवन-पद्धति से जोड़ने का प्रभावी माध्यम क्या हो सकता है। इसी प्रश्न का उत्तर धीरे-धीरे 'हरकारा' के रूप में विकसित हुआ और आज एक साकार यथार्थ के रूप में हमारे सामने उपस्थित है।

वर्ष 2026 में जब राजकीय महाविद्यालय पनारसा के विद्यार्थियों ने शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम के अंतर्गत केरल स्थित निर्मला कॉलेज का भ्रमण किया, तब दोनों संस्थानों के विद्यार्थियों और अध्यापकों के मध्य अनेक सार्थक चर्चाएँ हुईं। इन संवादों ने यह अनुभव कराया कि भले ही हम एक ही राष्ट्र के नागरिक हों, फिर भी भाषाई और सांस्कृतिक दूरी कभी-कभी हमें एक-दूसरे को गहराई से समझने से रोक देती है। केरल के विद्यार्थी हिंदी भाषा से पूर्णत: परिचित नहीं थे और हिमाचल प्रदेश के विद्यार्थी मलयालम भाषा को नहीं जानते थे, किंतु एक-दूसरे की संस्कृति, जीवन-शैली, परंपराओं और अनुभवों को जानने की उत्सुकता दोनों ओर समान रूप से विद्यमान थी। इसी अनुभव ने एक ऐसे मंच की आवश्यकता को रेखांकित किया जो संवाद को प्रोत्साहित करे, जिज्ञासाओं को दिशा दे और सांस्कृतिक समझ को विस्तृत बनाए।

'हरकारा' का मूल उद्देश्य विद्यार्थियों को शोध, लेखन और सांस्कृतिक अध्ययन के माध्यम से भारत की विविधताओं से जोड़ना है। इस ई-जर्नल में प्रकाशित होने वाली सामग्री मुख्यत: विद्यार्थियों द्वारा तैयार की जाएगी, जिसमें संस्कृति, लोकजीवन, भाषा, साहित्य, खान-पान, पर्यटन, पर्यावरण, मौसम, लोककला, इतिहास तथा सामाजिक जीवन के विविध आयामों पर आधारित शोध-पत्र, आलेख और अध्ययन सम्मिलित होंगे। इसके माध्यम से हिमाचल प्रदेश के विद्यार्थी केरल को समझेंगे और केरल के विद्यार्थी हिमाचल प्रदेश को जानेंगे। इस प्रकार यह मंच केवल जानकारी का आदान-प्रदान नहीं करेगा, बल्कि अनुभवों, दृष्टिकोणों और सांस्कृतिक संवेदनाओं के आदान-प्रदान का भी माध्यम बनेगा।

यह ई-जर्नल विद्यार्थियों में शोध-दृष्टि विकसित करने, लेखन को प्रोत्साहित करने तथा भारतीय संस्कृति की बहुरंगी छवि को समझने का अवसर प्रदान करेगा। इसके माध्यम से उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर तक विचारों की एक ऐसी सतत यात्र प्रारम्भ होगी, जिसमें भाषा बाधा नहीं, बल्कि सीखने और समझने का माध्यम बनेगी। यह प्रयास विद्यार्थियों को यह अनुभव कराएगा कि भारत की वास्तविक शक्ति उसकी विविधताओं में निहित है और उन विविधताओं को समझना ही राष्ट्रीय एकता की सबसे सुदृढ़ आधारशिला है।

'हरकारा' की अवधारणा राजकीय महाविद्यालय पनारसा की प्राचार्या डॉ. उरसेम लता के दूरदर्शी चिंतन का परिणाम है। उनके इस विचार को विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा सहयोगी संस्थानों ने पूरे उत्साह और समर्पण के साथ स्वीकार किया तथा सामूहिक प्रयासों से इसे मूर्त रूप प्रदान किया। आज 'हरकारा' केवल एक प्रकाशन नहीं, बल्कि एक साझा स्वप्न, एक शैक्षणिक संकल्प और एक सांस्कृतिक अभियान का प्रतीक है।

हमें विश्वास है कि 'हरकारा' आने वाले समय में हिमाचल प्रदेश और केरल के मध्य संवाद का एक सशक्त सेतु बनेगा, शोध और ज्ञान के नए आयाम स्थापित करेगा तथा विद्यार्थियों को भारत की सांस्कृतिक विविधता को समझने और उससे जुड़ने के लिए प्रेरित करेगा। अपने नाम की सार्थकता को चरितार्थ करते हुए यह ई-जर्नल विचारों, संस्कृतियों और मानवीय संबंधों का सच्चा 'हरकारा' सिद्ध होगा।

रवि शर्मा

वर्ष 22, अंकः 01, जून, 2026
ISSN 2349-3054
RNI : HPHIN/2006/22584

संपादक
रमेश पठानिया

सलाहकार संपादक
युवराज फकीरु

प्रधान संपादक
इंदु पटियाल

उप–संपादक
रोमिता शर्मा

प्रबंध संपादक
उमेश ललित

कानूनी सलाहकार
एड. पवनरेखा भारद्वाज

सह–संपादक
रिग्ज़िन हायरप्पा
महेन्द्र सिंह

कवर/रेखाचित्र

हम तक कैसे पहुंचे ?
पत्र इस पते पर भेजें :
हिमतरु प्रकाशन कार्यालय, गांव देवधार, डा. न्योली, जिला कुल्लू, हिमाचल प्रदेश –175138.
(पत्र में अपना पूरा नाम, पूरा पता एवं टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें)

टेलीफोन द्वारा : 9418063231, 8988205519, 9805766799 पर आप अपनी बात कह सकते हैं।

मेल द्वारा : himtarunews@gmail.com/
rameshpathania@gmail.com

इस अंक का मूल्य : 201 रुपए

ग्राहक बनने सम्बन्धी जानकारी डाक द्वारा पत्र भेजकर मांग सकते हैं।

**** किसी भी विवाद के लिए न्यायालय क्षेत्र कुल्लू होगा।**

संस्थापक संपादक
किशन श्रीमान

मुद्रक एवं प्रकाशक रूमा देवी द्वारा गांव देवधार, डाकघर न्योली, ज़िला कुल्लू से मुद्रित तथा श्रीराम प्रिंटिंग प्रेस, लोअर ढालपुर, कुल्लू से मुद्रित। **संपादक** – रमेश पठानिया; *पीआरपी एक्ट के तहत खबरों के चयन के लिए अधिकृत।

हिमतरु प्रकाशन, राजकीय महाविद्यालय पनारसा तथा निर्मला कॉलेज मुवुथ्थुपुझ्झा, केरल के साथ समझौता ज्ञापन के अंतर्गत प्रकाशित शोध विशेषांक

हरकारा

संपादक मण्डल

प्राध्यापक संपादक
अनीता
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय पनारसा, मंडी, हिमाचल प्रदेश।

सुजीदा
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
निर्मला कॉलेज, मुवुथ्थुपुझ्झा केरल।

छात्र संपादक
रवि शर्मा,
बीए तृतीय वर्ष, राजकीय महाविद्यालय पनारसा, मंडी।

फरहाना फातिमा,
हिंदी स्नातकोत्तर द्वितीय वर्ष
निर्मला कॉलेज, मुवुथ्थुपुझ्झा केरल।

आवरण/रेखाचित्र
सुरेश कुमार, गिरिराज

फोटो साभार
प्रोफेसर सुरेश
डॉ. उरसेम लता

अनमोल वचन

''मैं नहीं चाहता कि भारतीय के रूप में हमारी निष्ठा किसी भी अन्य निष्ठा से प्रभावित हो, चाहे वह धर्म, संस्कृति या भाषा से ही क्यों न उपजी हो। मैं चाहता हूँ कि लोग पहले भारतीय हों, अंत में भारतीय हों और भारतीय के अलावा कुछ न हों।''

– डॉ०. बी.आर. अंबेडकर

अनुक्रम

संदेश	डॉ. उरसेम लता, जस्टिन के. कुरियाकोसे	5,6
अभिव्यक्ति	रमेश पठानिया	09
संपादकीय आलेख	प्रो. अनीता, रवि शर्मा	9-12
लोक-संस्कृति	अनामिका, स्नेहा, दिव्य मोल, आशा देवी, अंजेला रेजी, अविनंदा सजीव, अभिजा सजीव, फतिमा इरशाद, प्रिया, उर्मिला, शेर सिंह	13-46
यात्रा	रवि शर्मा, रोहनी	47-59
स्मृतियां	साक्षी शर्मा, गिरिराज राणा	55-58
साक्षात्कार	डॉ. दयानंद गौतम- रीना चौहान किशन श्रीमान - स्नेहा राणा	59-72
प्रकृति और ऋतुएं	शेर सिंह, फरहाना फातिमा, जौहर नौशाद, फतिमा इरशाद, राखी सोनी	73-85
विचार	भावना विनोद, फातिमा इरशान	86-88
इतिहास और सांस्कृतिक धरोहर	प्रविथा, कुमकुम, आशुतोष, साक्षी	89-105
टीचर्स सेक्शन	डॉ. लीना वैद्या, डॉ. जी. सुजिदा, प्रो. सुरेश कुमार, प्रा. अनीता, डॉ. कविता कटोच, बिंदु सर्यवंशी	106-126

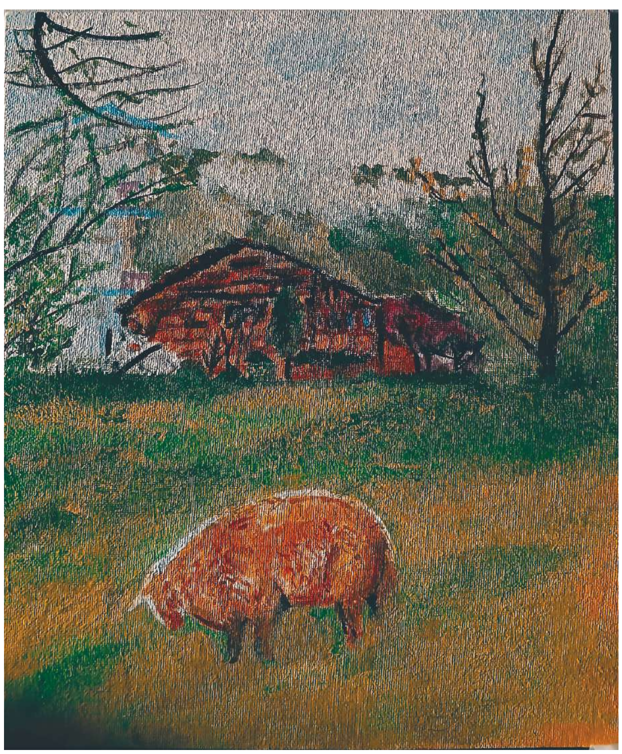

संदेश

डॉ. उरसेम लता

प्रिय विद्यार्थियो,
हरकारा के पहले अंक के लिए आप सभी को बधाई !

जैसा कि आप सभी को विदित ही है कि शोध पत्रिका 'हरकारा', 'हिमतरु' पत्रिका के तहत राजकीय महाविद्यालय पनारसा, निर्मला कॉलेज, मुवुथ्थुपुज्झा केरल तथा हिमतरु के मध्य हुए समझौते ज्ञापन (MoU) के अंतर्गत प्रारम्भ की जा रही है। इस पहल का उद्देश्य विभिन्न भौगोलिक, भाषाई एवं सांस्कृतिक परिवेशों के मध्य शैक्षणिक संवाद, शोध-संवर्धन और रचनात्मक आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करना है। हमें विश्वास है कि यह संयुक्त प्रयास विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के लिए अध्ययन, अनुसंधान और अभिव्यक्ति का एक सार्थक मंच सिद्ध होगा। 'हरकारा' का यह प्रथम अंक विद्यार्थियों द्वारा संकलित प्राथमिक सामग्री, अनुभवों, स्मृतियों और क्षेत्रीय अध्ययनों का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। हमारी यह भी कोशिश रहेगी कि इस अंक में एकत्रित सामग्री को केवल संकलन तक सीमित न रखा जाए, बल्कि इसे शोधा के अगले चरण का आधार बनाया जाए। इसी दिशा में आगामी चरण में विद्यार्थियों को शोध-पत्र लेखन की सम्पूर्ण प्रक्रिया- विषय चयन, समस्या-निर्धारण, प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का उपयोग, तथ्य-संकलन, विश्लेषण और अकादमिक लेखन की पद्यति से परिचित कराया जाएगा।

अब आपके अध्ययन पर बात-

मनुष्य केवल अपने समय में नहीं जीता; वह अपनी स्मृतियों, परंपराओं, अनुभवों और विरासतों में भी जीवित रहता है। समय का प्रवाह बहुत कुछ बदल देता है... रहन-सहन, भाषा, भोजन, संवेदनाएँ और यहाँ तक कि रिश्तों के अर्थ भी। किन्तु कुछ चीज़ें ऐसी होती हैं जिन्हें यदि शब्दों में न सहेजा जाए, तो वे धीरे-धीरे स्मृतियों के धुँधलके में विलीन होने लगती हैं। 'हरकारा' ई-जर्नल का यह अंक इसी कारण विशेष रूप से आत्मीय और आश्वस्त करने वाला प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें हमारे विद्यार्थियों ने केवल लिखा नहीं है, बल्कि अपनी जड़ों को छूने, अपने समय को समझने और अपनी सांस्कृतिक स्मृतियों को बचाए रखने का एक सुंदर और सार्थक प्रयास किया है।

कभी-कभी लगता है कि रसोई केवल भोजन बनाने का स्थान नहीं होती; वह घर की सबसे जीवित स्मृति होती है। वहाँ दादी-नानी के हाथों की ऊष्मा होती है, ऋतुओं का ज्ञान होता है, मिट्टी की गंध होती है और जीवन के छोटे-छोटे अनुभवों की अनकही कथाएँ भी होती हैं। आज जब बाज़ार की चमक और तात्कालिक सुविधा ने बहुत-सी पारंपरिक रेसिपियों को हमारे जीवन से दूर कर दिया है, ऐसे समय में विद्यार्थियों द्वारा अपनी दादी-नानी की रसोई से विलुप्त होती खाद्य परंपराओं को खोजकर उन्हें शब्द देना केवल लेखन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संरक्षण का एक गंभीर और संवेदनशील कार्य है।

यह देखकर विशेष प्रसन्नता हुई कि केरल के विद्यार्थियों ने अपने परिवेश को कितनी आत्मीयता से समझा है- नारियल के वृक्षों के बीच पनपती जीवन-शैली, वहाँ का खानपान, स्थानीय वनस्पतियाँ और परंपरागत व्यंजन उनके लेखन में केवल जानकारी बनकर नहीं आए, बल्कि जीवन के अनुभव बनकर उभरे हैं। वहीं हिमाचल के विद्यार्थियों ने देवदारों की छाया, पहाड़ों की सादगी, स्थानीय खानपान और अपनी मिटी से जुड़े स्वादों को जिस अपनत्व से शब्दों में बाँधा है, वह इस बात का प्रमाण है कि अपनी संस्कृति को समझना स्वयं को समझने की पहली शर्त है। नारियल और देवदार- दोनों भिन्न भूगोलों के प्रतीक होते हुए भी अंततः हमें इसी सत्य तक ले जाते हैं कि प्रकृति हर प्रदेश में मनुष्य को उसकी पहचान देती है।

यह अंक केवल स्मृतियों और खानपान तक सीमित नहीं है। हमारे विद्यार्थियों ने प्रश्न पूछने का साहस भी दिखाया है...और शिक्षा की वास्तविक शुरुआत शायद यहीं से होती है। रीना चौहान का डॉ. दयानंद गौतम के साथ संवाद हो अथवा हिमाचल में बौद्ध धर्म की उपस्थिति, उसकी सांस्कृतिक आकृतियों और शोधपरक संभावनाओं पर स्नेहा की किशन श्रीमान के साथ बातचीत हो- इन प्रयासों में एक जिज्ञासु मन दिखाई देता है, जो केवल उत्तरों से संतुष्ट नहीं होता, बल्कि प्रश्नों के भीतर उतरकर अर्थ तलाशना चाहता है। शिक्षा का सौंदर्य भी यही है कि वह हमें केवल जानकारी नहीं देती, बल्कि देखने की दृष्टि देती है।

निर्मला कॉलेज के साथ हुए समझौते ज्ञापन के अंतर्गत केरल की यात्रा पर गए विद्यार्थियों के संस्मरणों को पढ़ते हुए यह अनुभव हुआ कि यात्राएँ केवल स्थानों तक पहुँचने का माध्यम नहीं होतीं- वे भीतर के मनुष्य को भी थोड़ा बदल जाती हैं। किसी दूसरे प्रदेश की भाषा सुनना, भोजन का स्वाद लेना, लोगों के रहन-सहन को समझना और अनजान चेहरों में अपनापन ढूँढ लेना- यह सब हमें भीतर से अधिक व्यापक, अधिक उदार और अधिक मानवीय बनाता है। इन संस्मरणों में केवल यात्राओं का विवरण नहीं, बल्कि अनुभवों का स्पर्श और आत्मीयता की ऊष्मा भी अनुभव की जा सकती है।

प्रिय विद्यार्थियों,

संभवतः पाठक वर्ग भी इस बात को स्वीकार करेगा कि जो व्यक्ति लिखता है, वह अपने समय का साक्षी बनता है। वह उन बातों को बचा लेता है जो अन्यथा चुपचाप समय की धूल में दब जातीं। आपकी कलम में केवल शब्द नहीं, बल्कि समाज की स्मृति, संस्कृति की धड़कन और भविष्य के लिए एक दस्तावेज़ बनने की संभावना भी छिपी होती है।

शिक्षा का उद्देश्य केवल डिग्री प्राप्त करना नहीं, बल्कि संवेदनशील, विचारशील और जिज्ञासु मनुष्य का निर्माण करना है। 'हरकारा' का यह अंक उसी दिशा में एक सुंदर प्रयास है, जहाँ विद्यार्थी केवल पाठ्यक्रम नहीं पढ़ रहे, बल्कि जीवन को पढ़ना सीख रहे हैं।

इस अंक में योगदान देने वाले सभी विद्यार्थियों, अध्यापकों एवं संपादकीय टीम को मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ। आशा है कि यह प्रयास केवल एक प्रकाशन भर न रहे, बल्कि संवाद, संवेदना, शोध, स्मृति और सृजनशीलता की एक सतत यात्रा बन सके।

सादर शुभकामनाओं सहित,

प्राचार्या,
राजकीय महाविद्यालय पनारसा

No.

Date: 09.06.2026

Principal's Message

It gives me immense pleasure to present Harkara, the collaborative E-Journal initiated through the Memorandum of Understanding (MoU) between Nirmala College, Muvattupuzha and Panarsa College, Himachal Pradesh.

This academic partnership reflects our shared commitment to promoting knowledge exchange, research collaboration, and intellectual growth among students and faculty members. Harkara serves as a vibrant platform for the dissemination of innovative ideas, scholarly articles, creative expressions, and interdisciplinary perspectives.

The journal symbolizes not only an academic collaboration but also a cultural bridge connecting the diverse educational environments of Kerala and Himachal Pradesh. Through this initiative, we aspire to foster critical thinking, creativity, and a spirit of inquiry among our academic community.

I extend my sincere appreciation to the editorial team, faculty coordinators, contributors, and students whose dedication and hard work have made this publication possible. Their efforts have transformed this vision into a meaningful academic resource.

I am confident that Harkara will continue to inspire scholarly engagement, encourage collaborative learning, and contribute significantly to the advancement of higher education.

I wish the journal great success in its future editions and congratulate everyone associated with this remarkable initiative.

Dr. Jestin K Kuriakose
Principal
Nirmala College, Muvattupuzha (Autonomous)
PRINCIPAL-IN-CHARGE
NIRMALA COLLEGE
MUVATTUPUZHA
(AUTONOMOUS)

NIRMALA COLLEGE MUVATTUPUZHA (AUTONOMOUS) FOUNDED 1953

Mob: 94964 35170, 94466 00853
nirmalacollege@gmail.com www.nirmalacollege.ac.in

अभिव्यक्ति

रमेश पठानिया

हरकारा बहुत सुंदर शब्द है शुभ संदेश लाने वाला या पहुँचाने वाला। हरकारा शब्द कई बार डाकिये के लिए भी इस्तेमाल किया जाता था। हरकारा- संदेशवाहक, दूत, चिट्ठी-पत्री ले जाने वाला, संदेश ले जाने वाला। राजकीय महाविद्यालय पनारसा और केरलम के एक कॉलेज , निर्मला कॉलेज केरलम के समझौता ज्ञापन के तहत 'हरकारा' ई-पत्रिका का सम्पादन किया जा रहा है। हिमतरु पत्रिका इसमें अहम् भूमिका निभा रही है- सोशल मीडिया के इस युग में। इंटरनेट ऑफ थिंग्स के चलते विश्व के क्षणभर में आपस में जोड़ा जा सकता है। हिमाचल देवभूमि है, और केरल अपने पर्यटन, संस्कृति, इतिहास के लिए, विश्व प्रसिद्ध है। केरलम पहला राज्य है, जो सबसे पहले पूरी तरह से साक्षर हुआ।

हिमाचल और केरल के छात्रों के पास साझा करने के लिए कितना कुछ है। हिमाचल की संस्कृति, देव संस्कृति, खान-पान, नृत्य, पर्यटक स्थल और यहां की बोलियां, पहनावा, हस्तकरघा अपनी प्राकृतिक सुंदरता के कारण इसे 'गॉड्स ओन कंट्री' यानी 'भगवान का अपना घर' भी कहा जाता है। तिरुवनंतपुरम इस राज्य की राजधानी है और यहाँ की मुख्य भाषा मलयालम है। केरल अपने विस्तृत समुद्र तटों, शांत बैकवाटर्स 'बैकवाटर नेटवर्क', हरे-भरे हिल स्टेशन्स और मसालों के बागानों के लिए पूरी दुनिया में मशहूर है। अलेप्पी के हाउसबोट, मुन्नार के चाय के बागान और वायनाड के जंगल यहाँ के प्रमुख पर्यटन केंद्र हैं। प्रकृति के साथ-साथ केरल अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के लिए भी जाना जाता है। यहाँ का कथकली नृत्य, पारंपरिक त्योहार ओणम और प्राचीन युद्ध कला कलरीपायट्टु पूरी दुनिया में प्रसिद्ध हैं। इसके अलावा, केरल को आयुर्वेद की जन्मस्थली माना जाता है, जहाँ हर साल लाखों लोग प्रामाणिक आयुर्वेदिक उपचार के लिए आते हैं। सामाजिक विकास के मामले में केरल भारत का सबसे अग्रणी राज्य है। यहाँ की साक्षरता दर लगभग 94 प्रतिशत है, जो देश में सबसे अधिक है। केरल का खान-पान भी बेहद अनूठा है, जिसमें नारियल, चावल और स्थानीय मसालों का भरपूर उपयोग किया जाता है।

छात्र आदान-प्रदान की तरह, दो राज्यों की संस्कृतियों और यहां के रीति-रिवाजों को आपस में साझा करने के लिए छात्रों को हरकारा एक बड़ा और सुगम मंच प्रदान करेगा। पिछले कुछ सालों में केरल में राजनीतिक उथल-पुथल है, जिसका राज्य के विकास पर भी गहरा असर पड़ेगा। केरल हिमाचल की तरह सुंदर राज्य है। दोनों में बहुत सारी समानताएं हैं। यह बात अलग है कि वहां समुन्द्र और बैकवाटर्स हैं। हमारे यहां नहीं हैं लेकिन चाय के बागान और पहाड़ हमारे यहां भी हैं।

दोनों राज्यों के छात्रों को लेखों के द्वारा आपसी पत्राचार के द्वारा और रिसर्च के द्वारा, जानने का संहार अवसर मिलेगा। हरकारा अंग्रेजी के शब्द हार्बिंगर *harbinger* के आस-पास लगता है मुझे। यह मेरा अपना विचार है। हरकारा, हिमाचल और छात्रों बीच सांस्कृतिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक और प्राकृतिक आदान प्रदान का सेतु बनेगा।

सम्पादक- हिमतरु

सम्पादकीय आलेख

सांस्कृतिक स्मृतियों, लोक ज्ञान और मानवीय मूल्यों का एक जीवंत दस्तावेज

अनीता

प्रिय पाठकों,

'हरकारा' शब्द का अर्थ है- संदेशवाहक, शुभ समाचार पहुँचाने वाला या समाज की आवाज़ को जन-जन तक पहुँचाने वाला व्यक्ति। इसी भावना को केंद्र में रखते हुए 'हरकारा' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया गया है। इस पत्रिका का उद्देश्य विद्यार्थियों, शिक्षकों और समाज के बीच संवाद स्थापित करना, स्थानीय ज्ञान परंपराओं को संरक्षित करना तथा नई पीढ़ी को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ना है। आज जब सूचनाओं का अधिकांश स्रोत डिजिटल माध्यम बन चुके हैं, तब अपने परिवार, बुजुर्गों, शिक्षकों और स्थानीय समुदाय से प्राप्त ज्ञान को संजोना और उसे आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाना अत्यंत आवश्यक हो गया है। 'हरकारा' इसी प्रयास का एक सशक्त माध्यम है।

'हरकारा अंक-1' आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यंत हर्ष और गर्व का अनुभव हो रहा है। यह अंक भारतीय लोक संस्कृति, पारंपरिक ज्ञान, खान-पान, बोलियों, लोक साहित्य तथा बौद्ध चिंतन को समझने और नई पीढ़ी तक पहुँचाने का एक सार्थक प्रयास है। इस अंक की विशेषता यह है कि इसमें संकलित सामग्री किसी इंटरनेट स्रोत से नहीं, बल्कि परिवार, समाज, शिक्षकों, स्थानीय विद्वानों तथा पुस्तकालयों से प्राप्त ज्ञान पर आधारित है।

विद्यार्थियों ने अपनी दादी-नानी, माता-पिता, शिक्षकों तथा समाज के वरिष्ठ नागरिकों से संवाद कर हमारी सांस्कृतिक विरासत के विविध पहलुओं को जानने और समझने का प्रयास किया है। 'मेरी रसोई, मेरी विरासत', 'बोलियाँ और नाम', 'मौसम, पेड़ और कहावतें' तथा 'बुद्ध और संस्कार' जैसे विषयों के माध्यम से विद्यार्थियों ने अपने परिवेश से जुड़ी अमूल्य जानकारियों का संग्रह किया है।

हम विशेष रूप से आदरणीय श्री किशन जी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं, जिन्होंने बौद्ध धर्म, उसके सिद्धांतों तथा शांति, करुणा और मानवीय मूल्यों से संबंधित विषयों पर विद्यार्थियों को विस्तृत एवं प्रेरणादायक साक्षात्कार प्रदान किया। उनके विचारों ने विद्यार्थियों को बुद्ध के संदेश को गहराई से समझने का अवसर दिया।

इसी प्रकार हम डॉ. दयानंद गौतम जी के भी आभारी हैं, जिन्होंने लोक साहित्य के अंतर्गत लोक कथाओं, लोक परंपराओं और जनजीवन से जुड़े महत्वपूर्ण विषयों पर विद्यार्थियों का मार्गदर्शन किया। उनके साक्षात्कार से विद्यार्थियों को अपने क्षेत्र की मौखिक परंपराओं और सांस्कृतिक धरोहर के महत्व को समझने में सहायता मिली। इस अंक की एक अन्य विशेष उपलब्धि एक भारत श्रेष्ठ भारत (EBSB) कार्यक्रम के अंतर्गत निर्मला महाविद्यालय,

केरल के साथ विद्यार्थियों का ज्ञान एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान है। इस पहल के माध्यम से विद्यार्थियों को हिमाचल और केरल की संस्कृति, भाषा, खान-पान, परंपराओं तथा जीवन शैली को निकट से जानने का अवसर प्राप्त हुआ। इस संवाद ने राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक सम्मान और पारस्परिक समझ की भावना को और अधिक सुदृढ़ किया है।

हमें विश्वास है कि 'हरकारा अंक-1' केवल एक पत्रिका नहीं, बल्कि हमारी सांस्कृतिक स्मृतियों, लोक ज्ञान और मानवीय मूल्यों का एक जीवंत दस्तावेज सिद्ध होगा। आशा है कि यह प्रयास विद्यार्थियों को अपनी जड़ों से जुड़ने, शोध की भावना विकसित करने तथा अपनी विरासत पर गर्व करने के लिए प्रेरित करेगा।

सभी सहयोगियों, शिक्षकों, अभिभावकों, साक्षात्कारदाताओं और विद्यार्थियों का हार्दिक धन्यवाद।

अनीता

सहायक प्राध्यापक हिंदी

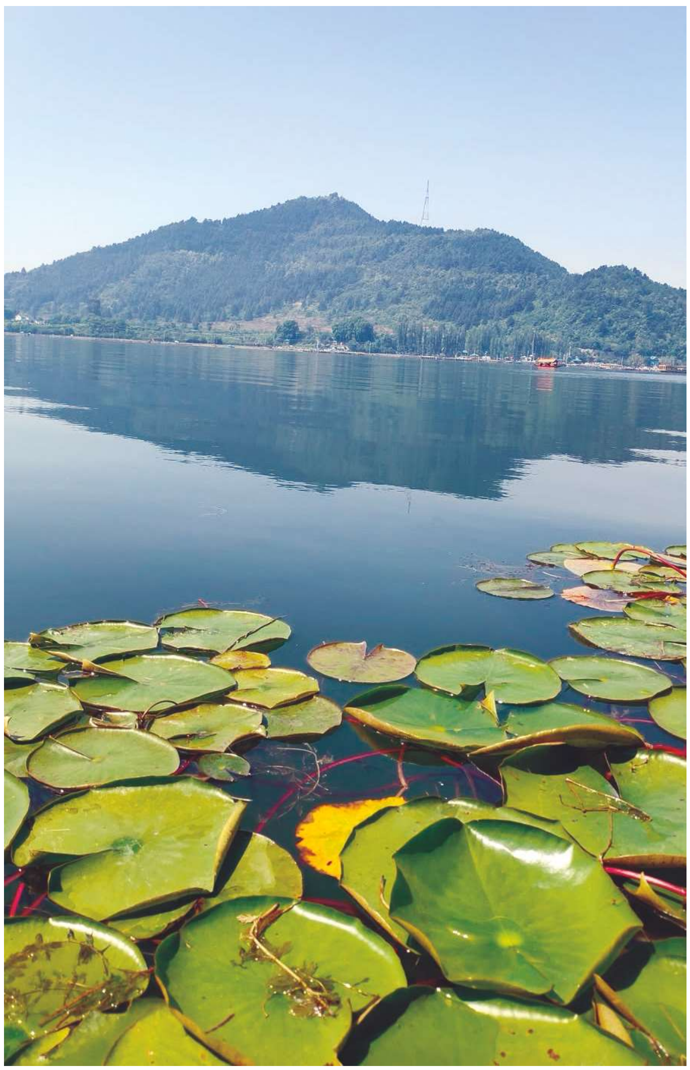

सम्पादकीय आलेख

”शब्द केवल अभिव्यक्ति नहीं होते, वे समय की स्मृतियाँ भी होते हैं

रवि शर्मा

संपादक का संदेश

”शब्द केवल अभिव्यक्ति नहीं होते, वे समय की स्मृतियाँ भी होते हैं। विचार केवल मन में जन्म नहीं लेते, वे संवाद, अध्ययन और शोध के माध्यम से समाज की सामूहिक चेतना का हिस्सा बनते हैं।”

अत्यंत हर्ष, गर्व और आत्मीय संतोष के साथ ”हरकारा ई–जर्नल” का प्रथम अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। यह अंक केवल एक पत्रिका का प्रारंभ नहीं, बल्कि ज्ञान, साहित्य, शोध और संवाद की एक ऐसी यात्रा का प्रथम चरण है, जो विभिन्न भौगोलिक सीमाओं, भाषाओं और संस्कृतियों को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास करती है।

राजकीय महाविद्यालय पनारसा (हिमाचल प्रदेश), निर्मला कॉलेज, केरल हिमतरु प्रकाशन संस्थान कुल्लू के मध्य संपन्न समझौता ज्ञापन (MOU) के अंतर्गत प्रकाशित हो रहा यह प्रथम अंक शैक्षणिक सहयोग, सांस्कृतिक आदान–प्रदान और शोधपरक चिंतन की एक सुंदर मिसाल है। हिमालय की वादियों से लेकर दक्षिण भारत की सांस्कृतिक धरती तक फैला यह संवाद भारतीय ज्ञान परंपरा की उसी भावना को प्रतिबिंबित करता है, जो विविधता में एकता और ज्ञान में समन्वय का संदेश देती है।

साहित्य और शोध किसी भी समाज की बौद्धिक धरोहर होते हैं। साहित्य हमें मनुष्य बनना सिखाता है और शोध हमें मनुष्य के रूप में निरंतर विकसित होने की प्रेरणा देता है। एक शोधपत्र केवल तथ्यों का संकलन नहीं होता, बल्कि वह जिज्ञासा से ज्ञान तक की यात्रा का दस्तावेज होता है। एक लेख केवल विचारों की प्रस्तुति नहीं, बल्कि संवेदनाओं और अनुभवों का सृजनात्मक विस्तार होता है। इसी कारण किसी भी शैक्षणिक संस्था की वास्तविक पहचान उसके भवनों से नहीं, बल्कि उसके विद्यार्थियों और अध्यापकों की बौद्धिक सक्रियता से निर्मित होती है।

इस अंक के लिए प्राप्त लेखों, शोधपत्रों और विभिन्न शोध–आधारित रचनाओं को पढ़ते हुए बार–बार यह अनुभूति हुई कि साहित्य कहीं विलुप्त नहीं हो रहा है। साहित्य आज भी जीवित है, क्योंकि उसे पढ़ने, समझने और आगे बढ़ाने वाले विद्यार्थी आज भी मौजूद हैं। कभी–कभी ऐसा लगता है कि हम साहित्य को खोज रहे हैं, जबकि सत्य यह है कि साहित्य स्वयं अपने साधकों का चयन करता है। इस अंक में सम्मिलित विद्यार्थियों की लेखनी, उनकी जिज्ञासा और उनके शोधपरक दृष्टिकोण को देखकर यह विश्वास और दृढ़ हुआ है कि साहित्य और शोध का भविष्य सुरक्षित हाथों में है।

मैं उन सभी विद्यार्थियों, शोधार्थियों और लेखकों को हार्दिक बधाई देता हूँ, जिन्होंने इस प्रथम अंक के लिए अपने लेख, शोधपत्र और रचनात्मक अभिव्यक्तियाँ भेजीं। आपकी सहभागिता ही इस जर्नल की वास्तविक शक्ति है। मेरी कामना है कि आप सभी भविष्य में भी इसी उत्साह, गंभीरता और अध्ययनशीलता

के साथ शोध और लेखन की इस यात्रा से जुड़े रहें।

आज किया गया अध्ययन और शोध आने वाले समय में न केवल आपके व्यक्तिगत विकास का आधार बनेगा, बल्कि समाज और ज्ञान–जगत को भी नई दिशाएँ प्रदान करेगा

मैं डॉ. उरसेम लता, प्राचार्या, राजकीय महाविद्यालय पनारसा के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। उनके मार्गदर्शन, संरक्षण और निरंतर प्रोत्साहन के बिना इस प्रयास को साकार रूप देना संभव नहीं था। उनके नेतृत्व ने हमें यह विश्वास दिया कि विद्यार्थी केवल ज्ञान ग्रहण करने वाले नहीं, बल्कि ज्ञान–सृजन की प्रक्रिया के सक्रिय सहभागी भी हो सकते हैं।

साथ ही निर्मला कॉलेज, केरल की हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. जूलिया इमैनुएल, डॉ. सुजीदा सभी सम्मानित अध्यापकों का मैं हृदय से धन्यवाद करता हूँ। उनके सहयोग, विश्वास और शैक्षणिक प्रतिबद्धता ने इस साझा पहल को सार्थकता प्रदान की है। निर्मला कॉलेज, केरल के सभी विद्यार्थियों का भी विशेष आभार, जिन्होंने उत्साहपूर्वक इस प्रयास में सहभागिता निभाई और इस जर्नल को राष्ट्रीय स्तर के संवाद का स्वरूप प्रदान किया।

मैं विशेष रूप से श्री किशन श्रीमान जी के प्रति अपनी गहन कृतज्ञता व्यक्त करना चाहता हूँ। इस ई–जर्नल को उसके अंतिम स्वरूप तक पहुँचाने में उनका योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। संपादन, तकनीकी सहयोग, संरचना और अंतिम प्रस्तुति के प्रत्येक चरण में उन्होंने जिस समर्पण और धैर्य के साथ हमारा सहयोग किया, वह इस जर्नल की सफलता का एक महत्वपूर्ण आधार है। उनका सहयोग हमारे लिए सदैव स्मरणीय रहेगा।

संपादकीय मंडल के सभी सदस्यों, अध्यापकों, विद्यार्थियों तथा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इस अंक से जुड़े प्रत्येक सहयोगी के प्रति मैं अपना हार्दिक धन्यवाद एवं आभार व्यक्त करता हूँ। किसी भी प्रकाशन की सफलता केवल उसके प्रकाशित पृष्ठों में नहीं, बल्कि उसके पीछे कार्यरत उन सभी व्यक्तियों के सामूहिक श्रम में निहित होती है, जिन्होंने उसे आकार देने में अपनी भूमिका निभाई। आप सभी की भूमिका इस अंक को अंतिम स्वरूप प्रदान करने में अत्यंत महत्वपूर्ण, निर्णायक और प्रशंसनीय रही है। व्यक्तिगत रूप से, मैं स्वयं को अत्यंत सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मुझे "हरकारा ई–जर्नल" के प्रथम अंक में छात्र–संपादक के रूप में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। यह अनुभव मेरे लिए केवल एक दायित्व नहीं, बल्कि सीखने, समझने और विविध विचारों के साथ संवाद स्थापित करने की एक अविस्मरणीय यात्रा रहा है।

अंत में, मैं यही कहना चाहूँगा कि जब तक प्रश्न जीवित हैं, तब तक शोध जीवित रहेगाय जब तक संवेदनाएँ जीवित हैं, तब तक साहित्य जीवित रहेगाय और जब तक विद्यार्थी सीखने की जिज्ञासा के साथ आगे बढ़ते रहेंगे, तब तक ज्ञान की यह परंपरा कभी समाप्त नहीं होगी।

इसी विश्वास और आशा के साथ "हरकारा ई–जर्नल" का यह प्रथम अंक आप सभी को समर्पित है। आप सभी के उज्ज्वल भविष्य, सतत शोध–यात्रा और सृजनात्मक उपलब्धियों के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

रवि शर्मा
छात्र–संपादक
हरकारा ई–जर्नल
राजकीय महाविद्यालय पनारसा, हिमाचल प्रदेश

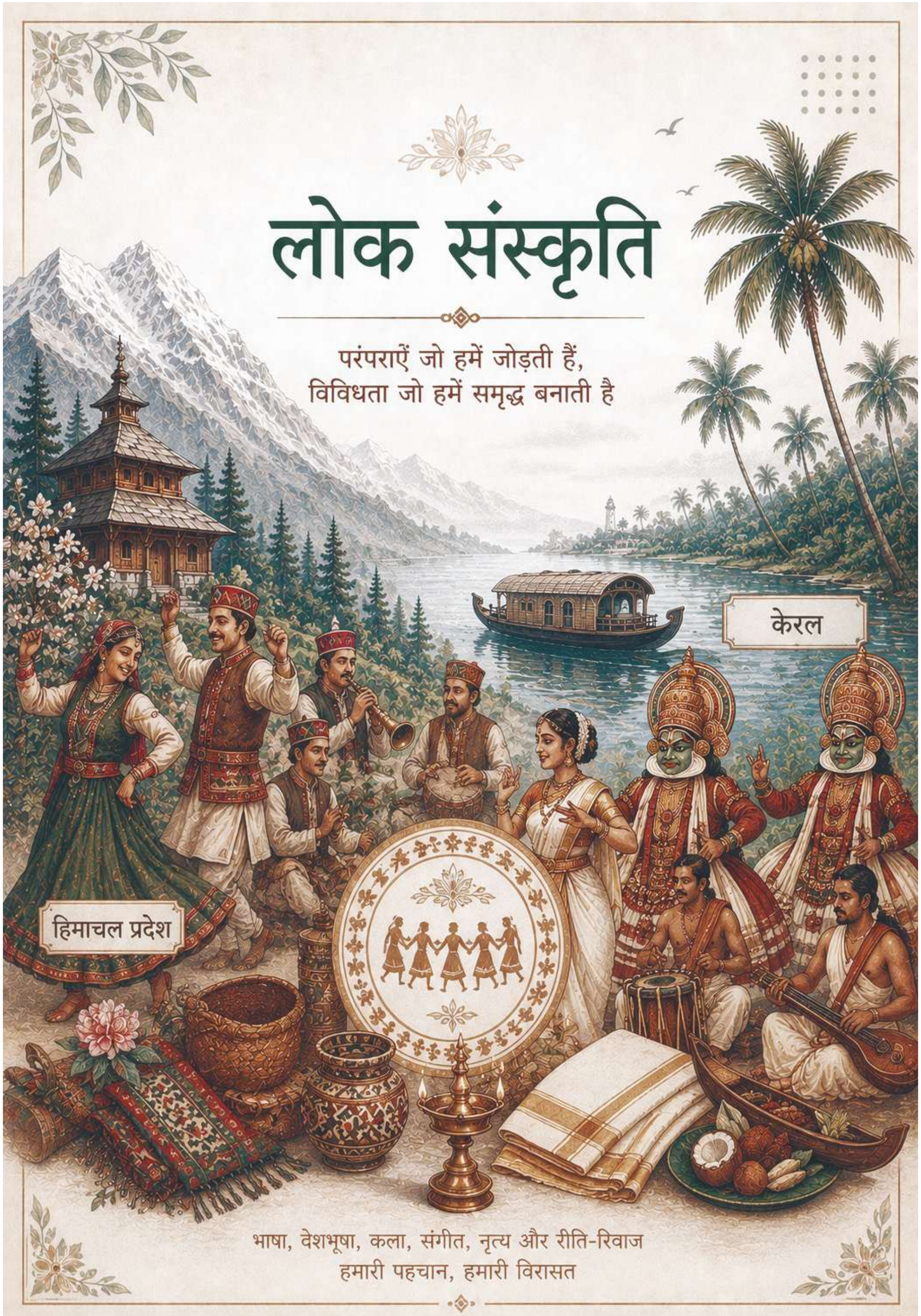
लोक संस्कृति
परंपराएँ जो हमें जोड़ती हैं,
विविधता जो हमें समृद्ध बनाती है
केरल
हिमाचल प्रदेश
भाषा, वेशभूषा, कला, संगीत, नृत्य और रीति-रिवाज
हमारी पहचान, हमारी विरासत

लुप्त होते पारम्परिक व्यंजन

सोर्स लाइन : यह जानकारी मैने अपनी दादी श्रीमती भक्ति देवी जी से दिनांक 21मई 2026 को पूछकर लिखी है।

अनामिका

मेरी दादी का नाश्ता

30 साल पहले नाश्ते में क्या बनाते थे?

अभी क्या बनता है?

उसके बाद उनकी बताई दो रेसिपी लिखें।

आज से 30 साल पहले नाश्ते में बहुत चीजें बनती थी जो या तो अब कम बनती हैं या तो बनती ही नहीं हैं। आज से 30 साल पहले जौ की रोटी, कोदरे की रोटी, बाजरे की रोटी, राजगिरा की खीर, सरसों का शुद्ध शाग, कद्दू, कद्दू के थेपड़े, मक्का की रोटी, फीमड़ा यह सभी चीजें पहले बनाई जाती थी।
और समय के साथ ये सब चीजें कम होती है और खायी ही नहीं जाती हैं।

पहले के नाश्ते के पकवान

जौ की रोटी : आज से 30 साल पहले जौ की रोटी बहुत ज्यादा खाई जाती थी, परन्तु अब के समय में जौ की रोटी ना तो दिखने को मिलती है और ना ही खाने को। यह जौ बाजरे की रोटी हमारे दादा-दादी, नाना-नानी ज्यादा खाते थे।

कोदरे की रोटी : कोदरे की रोटी हमारे दादा-दादी, नाना-नानी के समय में काफी खाई जाती थी, परन्तु अब इसे कोई नहीं खाता। पहले इस Natural तरीके से खेतों में उगाया जाता था फिर उसका आटा बनाया जाता था। यह रोटी खाने में स्वादिष्ट तथा सेहतमंद होती थी, ऐसा माना जाता था कि कोदरा की रोटी ताकत वाली होती थी।

बाजरे की रोटी : पहले के समय में बाजरे की रोटी भी बनाई जाती थी लेकिन अब हमें बाजरे की रोटी खाने को नहीं मिलती।

राजगिरा : राजगिरा भी पहले के समय में काफी बनाया, तथा खाया जाता था। इसके लड्डू और खीर भी बनती थी जो ताकत वाली होती थी।

सरसों का शुद्ध शाग : पहले के समय में सरसों का शुद्ध शाग खाया जाता था जो काफी सेहतमंद होता था। पुराने बुजुर्ग खेती से लगाया शाग खाते थे। अब के समय में साग तो मिलता है पर पहले की तरह Natural तथा देशी नहीं मिलता। अब का शाग हाईब्रिड होता है तथा खाने में भी कम स्वादिष्ट होता है। पर पहले का देशी शाग खाने में स्वादिष्ट होता था।

कद्दू के थेपड़े : पहले के समय नाश्ते में कद्दू के थेपड़े भी बहुत खाए जाते थे। यह बहुत ताकतवर होते थे। आज

कल के समय में कद्दू से काफी पकवान बनाएं जाते हैं परन्तु कद्दू के थेपड़े कोई नहीं बनाते।

मक्का की रोटी : पहले के समय में मक्का की रोटी बहुत बनाई जाती थी। मक्का की रोटी को पहले सरसों के शाग के साथ खाया जाता था। आज के समय में मक्का की रोटी कम बनाई जाती है। और कहीं-कहीं बनाई जाती है।

फीमडा : पहले के समय में फीमडा कफी ज्यादा बनाया जाता था पर अब के समय में यह नहीं बनाया जाता। यह खाने में टेस्टी होता है। यह चावल तथा लस्सी (छाछ) से बनाया जाता था। आमतौर पर यह कच्चे चावलों से बनाया जाता था। यह पकवान शरीर को ठंडक प्रदान करता था। यह घर में ही उगाए Natural चावलों से बनाया जाता था।

इन सभी पकवानों की खास बात तो- यह है इन आनाज तथा सब्जियों को Natural तरीके से घर पर ही उगाया जाता था। इसमें कोई भी मिलावट नहीं होती थी। और ना ही खाद का उपयोग किया जाता था इसके लिए गोबर का ही उपयोग किया जाता था यह बहुत ही शुद्ध तथा नेचुरल होती थी।

अभी क्या बनता है?

अभी के समय में दुकानों से ली गई चीजें खाई जाती हैं यह ना तो शुद्ध होती है ना तो Natural तरीके से तैयार- की जाती है। इन सभी पकवानों में मिलावट होती है।

परांठे : अभी के समय ज्यादातर पराठे बनाए जाते हैं यह ना तो सेहत के लिए ठीक होते हैं और ना ही छंजनतंस तरीके से इसका समान होता है। इसके लिए जो समान लगता है उसमें मिलावट होती है वह पूरी तरह से शुद्ध नहीं होता है।

सेवइयां : अभी के समय में नाश्ते में सेवइयां भी बनाई जाती हैं। जो की घी व दूध से बनाई जाती हैं। यह खाने के लिए ताकत वाली होती है।

दलिया : अभी के समय में दलिया बनाया जाता है यह दलिया गेहूं तथा जौ का भी बनाया जाता है। दलिया को भी दूध के साथ पकाया जाता है।

चपाती : अभी के समय में चपाती बनाई जाती थी। बुजुर्गों का कहना है की उनके समय में गेहूं के आटे से बनाई गई चपाती कम खाई जाती थी। उनका मानना है कि यदि घरों में कोई function हो तभी ही गेहूं की रोटी खाने को मिलती थी। उन्हें यह चपाती कभी-कभी ही खाने को मिलती थी।

'धरोहर डायरी'

सोर्स लाइन : यह जानकारी मैंने अपनी दादी श्रीमती ..... से दिनांक 15 अक्टूबर 2026 को पूछकर लिखी है

हरकारा स्टाइल रेसिपी :

राजगिरा (सरयारा) की खीर- दादी की रेसिपी

सामग्री :

राजगिरा के दाने - 2 कटोरी

दूधा - 5 गिलास

शक्कर - स्वादानुसार

देशी घी - 3 चम्मच

बनाने की विधि :

दादी की टिप : पहले राजगिरा को पहले हल्का भून लो, ताकि कच्चापन निकल जाए। दादी कहती हैं इससे खुशबू अच्छी आती है।

भुने हुए राजगिरा को सिलबटे पर दरदरा पीस लो। मिक्सी मत चलाना, दादी मना करती हैं।

एक पीतल की कड़ाही में दूध गर्म करो। जब उबाल आए तो पिसा राजगिरा डाल दो।

धीमी आंच पर 15 मिनट पकाओ। बीच-बीच में लकड़ी के चमचे से हिलाते रहो।

जब गाढ़ी हो जाए तो शक्कर और ऊपर से देशी घी डालकर उतार लो।

खास बात : दादी कहती हैं इसे मिट्टी के बर्तन में खाओ तो स्वाद दोगुना हो जाता है। ये सर्दियों में बच्चों को ताकत के लिए खिलाई जाती थी। यह शरीर को गर्म रखता है इसीलिए इसको सर्दियों में ज्यादा खाया जाता था यह राजगिरा एक तरह का अनाज होता है जिसे मई तथा जून के महीने में उगाया जाता था इसे गेहूं की तरह ही उगाया जाता था ।

हरकारा स्टाइल रेसिपी :

चावल का फीमडा : दादी की रेसिपी

सामग्री : चावल, छाछ/लस्सी, नामक, हल्दी, मिर्ची अन्य कुछ गर्म मसाले।

चावल : 1 गिलास

छाछ : 4 गिलास

नामक : स्वादानुसार

हल्दी : 1 छोटा चम्मच

मिर्च : स्वादानुसार

गर्म मसाले : स्वादानुसार

विधि : दादी कहती है कि पहले चावल को अच्छे से पकाया जाता है फिर उस लस्सी मिलाई जाती है। लस्सी और चावल को अच्छे से मिलाया जाता है फिर इसमें भुने मसाले तथा मिर्ची और हल्दी मिलाई जाती है फिर इसे अच्छे से मिला कर इसे पकाने के लिये रखा जाता है और अच्छे से पकने के बाद इसे खाया जाता है

खास बात : दादी कहती है कि यह खाने में स्वादिष्ट होता है और यह हमारे घर की ही नेचुरल सामग्री से ही बनाया जाता हैं दादी का कहना है को की इसे गर्मियों के मौसम में खाया जाता है क्योंकि यह शरीर को ठंडा रखता था दादी कहती है कि इसकी खास बात यह है कि इसको बनाने के लिए चावल खुद ही खेतों में उगाए जाते थे और इसके लिए उपयोग की लस्सी खुद की गाय के दूध से नेचरल तरीके से तैयार की जाती थी

स्रोत : मेरी दादी श्रीमती भक्ति देवी, उम्र 75 वर्ष, गाँव- पनारसा। दिनांक 22-05-2026

कक्षा : वी. ए. द्वितीय वर्ष,

राजकीय महाविद्यालय, पनारसा

मेरी रसोई, मेरी विरासत

स्नेहा

1. **मेरी दादी का नाश्ता**
सीक 'ममा'
पौष्टिक पहाड़ी हलवा (हिमाचल प्रदेश)
आवश्यक सामग्री :
सीक का पाउडर
शुद्ध देसी घी (मुख्य सामग्री)
चीनी (मिठास के लिए)
पानी (घोल बनाने के लिए)
दूध (स्वाद को बढ़ाने के लिए)

बनाने की विधि :
पकवान 1: सीक का हलवा (ममा Halw)

सबसे पहले सीक के पाउडर में पानी मिलाकर एक गाढ़ा मिश्रण (बैटर) तैयार कर लें। कड़ाही में भरपूर मात्र में शुद्ध देसी घी डालें और इस तैयार मिश्रण को उसमें डालकर धीमी आंच पर चलाएं। इसके बाद इसमें स्वाद के अनुसार चीनी मिलाएं और लगातार चलाते हुए तब तक पकाएं जब तक कि यह हलवा न बन जाए।

पकवान 2 : चिल्डू (चिल्डू - पारंपरिक पैनकेक)

सीक के पाउडर में पानी और स्वाद अनुसार नमक डालें या अन्य मसाले डालें फिर यह एक पतला घोल तैयार होगा। तवे को अच्छे से गरम करके उस पर देसी घी चारों तरफ फैलाएं। तवे पर घोल को पतला फैलाकर दोनों तरफ से धीमी आंच पर तब तक सेंकें, जब तक कि यह कुरकुरा और स्वादिष्ट न हो जाए।

पकाने का समय : लगभग 15 से 20 मिनट

सीक के हलवे को और चिल्डू को गरमा-गरम परोसा जाता है। घी और चीनी के इस पारंपरिक मेल से तैयार यह नाश्ता हमारे पूर्वजों के शुद्ध प्यार से भरपूर और दिल को खुश कर देने वाला होता है।

विशेषता/महत्व : घी और चीनी के साथ मिलकर यह व्यंजन अत्यधिक पौष्टिक हो जाता है और इसके कई औषधीय गुण हैं।

- यह जोड़ों के दर्द में अत्यधिक राहत देता है।
- सर्दियों के मौसम में शरीर को अंदर से गर्म रखता है।
- यह पचाने में बेहद आसान होता है और शरीर को तुरंत ऊर्जा देता है।

सुझाव : सीक का असली और पारंपरिक स्वाद शुद्ध देसी घी और चीनी के सही संतुलन से ही आता है, इसलिए इसमें तेल का उपयोग न करें। हलवा बनाते समय मिश्रण को लगातार चलाते रहें ताकि पाउडर में गांठें (स्नउचे)

न बनें और चीनी पूरी तरह से घुल जाए।

फेमड़ा (Feamda)

नमकीन पारंपरिक पकवान

आवश्यक सामग्री :

चावल का फेमड़ा : चावल, अत्यधिक पानी, नमक, पारंपरिक पहाड़ी मसाले, ताजी लस्सी।

रोटियों का फेमड़ा : बची हुई या ताजी रोटियां (3-4), ताजी लस्सी (2-3 कप), तेल, जीरा, राई, मेथी दाना और मसाले।

सरियारा का फेमड़ा **:** सरियारा (1 कप), पारंपरिक मसाले, शुद्ध देसी घी।

बनाने की विधि :

पकवान 1 **: चावल का फेमड़ा**

सबसे पहले चावल में सामान्य से बहुत ज्यादा पानी डालकर पकने के लिए रखें। इसको तब तक अच्छी तरह उबालें जब तक कि वे पूरी तरह से गलकर बहुत गीले और मुलायम न हो जाएं। इसमें स्वादानुसार नमक-मसाले मिलाएं और स्वाद बढ़ाने के लिए ऊपर से ताजी लस्सी डालकर परोसें।

पकवान 2 **: (रोटियों वाला फेमड़ा)**

कड़ाही में तेल गरम करके उसमें सभी मसाले डालकर तड़का लगाएं, फिर उसमें ताजी लस्सी डालें। लस्सी में उबाल आने पर बची हुई रोटियों को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़कर या काटकर अंदर डाल दें। इसे धीमी आंच पर तब तक पकाएं जब तक मिश्रण कढ़ी की तरह गाढ़ा (Thick) न हो जाए।

पकवान 3 **: (सरियारा का फेमड़ा)**

सरियारा के दानों से अतिरिक्त कंकड़-पत्थर चुनकर हटा दें और पानी से अच्छे से धो लें। इसे पानी में धीमी आंच पर अच्छी तरह पकाएं और पकने के बाद स्वादानुसार मसाले मिलाएं। इसे थाली में निकालें और ऊपर से भरपूर मात्र में शुद्ध देसी घी डालें।

पकाने का समय : (लगभग 20 से 30 मिनट)

इसे गरमा-गरम थाली में सीधे परोसा जाता है। चावल वाले फेमड़े को ताजी लस्सी के साथ और सरियारा वाले फेमड़े को ऊपर से शुद्ध देसी घी का अतिरिक्त फ्लेवर देकर खाया जाता है।

विशेषता/महत्व :

- यह व्यंजन पहाड़ी रसोई की सूझबूझ और संस्कृति को दर्शाता है।
- पाचन के लिए सर्वोत्तम
- पोषण का पावरहाउस
- हल्का आहार
- कम सामग्री में बेहतरीन स्वाद

सुझाव : लस्सी हमेशा ताजी और कम खट्ठी उपयोग करें, जिससे व्यंजन का स्वाद संतुलित रहे।

रोटियों वाले फेमड़े में रोटियां डालने के बाद इसे बहुत ज्यादा न उबालें, अन्यथा रोटियां पूरी तरह घुलकर हलवा बन जाएंगी।

सत्तू (Sattu)

पौष्टिक स्नैक (दंबा)

आवश्यक सामग्री :

अधपके जौ, मक्की, कनक आवश्यकतानुसार

गुड़ - मीठे के अनुसार

घी - मिश्रण को बांधने और स्वाद के लिए

पानी – गुड़ पिघलाने के लिए

बनाने की विधि : सबसे पहले खेत से जौ की ऐसी बालियाँ लें जो पूरी तरह पकी न हों (अधपकी हों)। इन्हें काटकर अलग निकाल लें। इसके बाद जौ के दानों की अच्छी तरह से सफाई करें ताकि धूल-मिट्टी और छिलके निकल जाएं। साफ किए हुए जौ को कढ़ाई में डालकर अच्छी तरह से भून (Roast) लें। भूने हुए जौ को ठंडा करके चक्की या ओखली में बारीक पीस लें। आपका सत्तू का आटा तैयार है।

सत्तू मिश्रण बनाने की विधि : एक बर्तन में गुड़ और थोड़ा पानी डालकर उसे रखें ताकि गुड़ पूरी तरह पिघल जाए। गुड़ के पानी को अच्छी तरह उबालें और फिर उसे आंच से उतारकर पूरी तरह ठंडा होने दें। जब गुड़ का पानी ठंडा हो जाए, तब इसमें तैयार किया हुआ जौ का भूना आटा और आवश्यकतानुसार घी डालें। इस पूरे मिक्सचर को हाथों या चम्मच से अच्छी तरह आपस में घोलें और मिलाएं। आपका पारंपरिक और स्वादिष्ट सत्तू बनकर पूरी तरह तैयार है।

पकाने का समय : 40 से 55 मिनट

इस सत्तू को हम विभिन्न तरीकों से खा सकते हैं। जैसे कि यह सूखा पाउडर होता है, तो इसको हम वैसे सादा भी खा सकते हैं और इसको लड्डू का आकार देकर भी हम खा सकते हैं। इसके अलावा, इसे पानी के साथ भी खाया जा सकता है और दूध के साथ भी खाया जा सकता है।

विशेषता/महत्व : यह सत्तू ऊर्जा का पावर-हाउस है। अधपके अनाज को भूनकर पीसने से इसका स्वाद अनोखा और सुपाच्य (पचने में आसान) हो जाता है। आंगनवाड़ी में मिलने वाले सत्तू की तरह यह बच्चों और बड़ों दोनों के शरीर को तुरंत ताकत और पोषण देता है।

सुझाव : इसी विधि का पालन करके आप छल्ली (मक्की) के आटे और कनक (गेहूं) के आटे का भी सत्तू तैयार कर सकते हैं। ध्यान रहे कि गुड़ का पानी पूरी तरह ठंडा होने के बाद ही आटा मिलाएं, वरना मिश्रण में गांठें पड़ सकती हैं।

2. चावल हमारी थाली में

Rice in Our Plate

– विभिन्न घरेलू चावल के व्यंजन

मुख्य भोजन, मीठा, पारंपरिक और त्योहार विशेष व्यंजन

आवश्यक सामग्री :

चावल

दालें (मूंग और मास/उड़द) ये ज्यादा पौष्टिक मानी जाती हैं।

दूध

चीनी या गुड़

ताजी सब्जियां

घी या तेल

खड़े मसाले और नमक

1. **सादे चावल :** रोज के साधारण खाने के लिए चावल को साफ करके पानी में उबाला या प्रेशर कुकर में पकाया जाता है।

2. **बिरयानी :** विशेष दिनों पर चावल को विभिन्न ताजी सब्जियों, घी और खड़े मसालों के साथ पकाकर खुशबूदार वेज बिरयानी बनाई जाती है।

3. **मीठे चावल :** चावल को चीनी या गुड़ की चाशनी और सूखे मेवों के साथ मिलाकर मीठा पकवान तैयार किया जाता है।

4. **खिचड़ी :** चावल को मूंग या मास (उड़द) की दाल और हल्के मसालों के साथ मिलाकर पौष्टिक खिचड़ी बनाई जाती है।

5. **खीर :** चावल को दूध के साथ धीमी आंच पर गाढ़ा होने तक पकाया जाता है और अंत में चीनी मिलाई जाती है।

विशेषता/महत्व :

दादी माँ के अनुसार, हमारे घर में चावल का हर रूप किसी न किसी खास त्योहार या महीने से जुड़ा है :

- **नया साल (नया संवत) :** इस शुभ दिन पर घर में मीठे चावल बनाना बहुत अच्छा और समृद्धि लाने वाला माना जाता है।
- **लोहड़ी :** ठंड के मौसम में इस त्योहार के दिन मास या मूंग की दाल की खिचड़ी बनाई जाती है जो शरीर को भरपूर पोषण देती है।
- सावन के पवित्र महीने में चावल की पारंपरिक खीर (या साबूदाना खीर) बनाना बेहद शुभ माना जाता है।

3. अचार का डिब्बा और घड़ा (पारंपरिक रेसिपी और मौसम)

- मौसम के अनुसार अचार का कैलेंडर (Seasonal Calendar)

महीना (Month)		अचार का नाम (Pickle Name)
फरवरी-मार्च	-	फेगड़ा
अप्रैल	-	कराला (फूल जैसा दिखता है)
मई	-	लिंगड़
जून	-	घीया और आम
जुलाई	-	आड़ू
सितंबर	-	सेब और जापानी फल
नवंबर-दिसंबर	-	अरबी
दिसंबर-जनवरी	-	गलगल

12 महीने (सदाबहार) सफेद आलू, कड़वे करैले, मिर्च, नींबू, लहसुन और मिक्स अचार।

तीन प्रमुख अचारों की रेसिपी

रेसिपी-1 : पहाड़ी लिंगड़ के अचार की तैयारी : लिंगड़ के ऊपर के रेशों को साफ करके छोटे टुकड़ों में काट लें। इन्हें पानी में आधा उबालें, पूरा नहीं गलाना है। उबालने के बाद इसे सुखा लें। कढ़ाई में सरसों का तेल गर्म करें। उसमें जीरा, अजवाइन, मेथी और गरम मसाला डालकर भूनें। जब तेल और मसाला पूरी तरह ठंडा हो जाए, तब उसमें लिंगड़ मिलाकर मिक्स करें। इसे साफ डब्बे में भर कर ढक्कन कसकर बंद कर दें। 15 दिन के अंदर यह तैयार हो जाता है।

रेसिपी-2 : सदाबहार मिक्स वेज अचार की तैयारी : गाजर, मूली, गोभी आदि सभी सब्जियों को साफ करके छोटे टुकड़ों में काट लें। सब्जियों को आधा उबालें और फिर कपड़े पर फैलाकर थोड़ी देर सुखाएं। गर्म सरसों के तेल में जीरा, अजवाइन, मेथी और गरम मसाला भूनें। तेल के ठंडा होने पर सब्जियां डालकर अच्छे से मिलाएं और एयर-टाइट डब्बे में रख दें।

रेसिपी-3 : जापानी फल के अचार की तैयारी : जापानी फल (कच्ची वाली किस्म) को अच्छे से धोकर, सुखाकर उसके छोटे-छोटे टुकड़े काट लें।

महत्वपूर्ण बात : इस अचार में फल के टुकड़ों को बिल्कुल भी उबाला नहीं जाता है क्योंकि उबालने से यह

फल गल जाएगा। कढ़ाई में सरसों का तेल गर्म करके जीरा, मेथी, अजवाइन और गरम मसाला डालें। तेल और मसाले पूरी तरह ठंडे होने पर जापानी फल के कटे टुकड़ों को सीधे तेल में डालें। मिलाकर मिक्स करें और कांच के जार में रख दें।

विशेष सावधानी : अचार को खराब होने से बचाने के लिए डब्बे का ढक्कन हमेशा कसकर (Air-tight) बंद होना चाहिए। हवा जाने पर इसके ऊपर एक सफ़ेद परत (फंगस) जम जाती है, जिससे अचार खराब हो जाता है। यदि इसे बिल्कुल बंद ढक्कन में रखा जाता है तो यह साल भर भी चलता है।

पारंपरिक अचार बनाने की यह कला दर्शाती है कि हमारे पूर्वज भोजन को बिना किसी केमिकल के, केवल मसालों और तेल की मदद से साल भर सुरक्षित रखने का विज्ञान बखूबी जानते थे।

4. त्यौहार की खास डिश

Festive Highlights

- **लोहड़ी :** इस दिन तिल, गुड़, मूंगफली, बोड़े और स्वाले (कचौरी) बनते हैं।

इस दिन मुख्य रूप से माष (उड़द) और मूंग की दाल की खिचड़ी बनाई जाती है, जो ठंड में शरीर को बहुत अधिक पौष्टिकता देती है। यह पूर्वजों के समय से चली आ रही एक प्राचीन परंपरा है।

इसके अगले दिन माघ का साजा मनाया जाता है। इस दिन विशेष रूप से 'शोटरे' बनाए जाते हैं। हलवा, पूरी और अखरोट को थाली में सजाया जाता है।

जूब की परंपरा : इस दिन समृद्धि के प्रतीक के रूप में घर के बड़े-बुजुर्गों को 'जूब' देकर उनका आशीर्वाद लिया जाता है। मान्यता है कि मकर संक्रांति से एक महीना पहले देवी-देवता तपस्या पर चले जाते हैं, जिसे पहाड़ी में 'नरोलना' कहते हैं। माघ के साजे के दिन देवताओं की तपस्या पूरी होती है, उनका पर्दा हटाया जाता है और पूजा की जाती है।

- **फागली :** इस उत्सव में पुरुष लकड़ी, घास और पत्तियों से बने विशेष मुखौटे पहनकर गांव के हर घर में खुशियां और दुआएं बांटने जाते हैं। वे विशेष रूप से नई शादी वाले या नवजात बच्चे वाले घरों में जाते हैं। ऐसा कहते हैं कि जिसके पास झाड़ू होता है वो झाड़ू देते हैं और जिसके पास नहीं होती तो वो रस्सी देते थे। इसके अलावा फूलों से सजे एक विशेष गुच्छे को ऊपर से नीचे गिराया जाता है। यह जिसके हाथ में गिरता है, उसकी किस्मत चमक जाती है। ऐसा माना जाता है।

- **शिवरात्रि :** इस दिन आटे से बकरा, सीढ़ी आदि के आकार बनाए जाते हैं। साथ ही बड़े-बड़े 'रोटे' 'बीच में छेद वाली मोटी रोटी' और हलवा बनाया जाता है। पवित्र स्थान पर मंडला बनाकर ताजे फल, कच्चे अनाज और कुल देवता के मोहरे रखे जाते हैं। पाजा, बोदी, जौ और संतरे की बड़ी माला बनाई जाती है। पूरी रात भक्ति-भाव के साथ कीर्तन होता है और सुबह 4 बजे भजन गाते 'साईं' पहाड़ी भाषा में कहते हैं और उसे बाहर रखते हैं।

ये स्थानीय त्योहार और उनकी अनूठी रीतियाँ हमारी समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर हैं, जो आज भी हमें अपनी जड़ों, पूर्वजों के इतिहास और सामाजिक सद्भाव से जोड़े रखती हैं।

5. सर्दियों का विशेष पारंपरिक खाना

(Winter Special Dishes)

सर्दियों के मौसम में हमारे शरीर को अंदर से गर्म रखने और रोगों से लड़ने की क्षमता बढ़ाने के लिए विशेष प्रकार के गर्म और पौष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है। पारंपरिक खान-पान में ऐसे व्यंजनों को शामिल किया गया है जो ठंड से रक्षा करते हैं।

- **बाड़ी :** सबसे पहले एक बर्तन में पानी लिया जाता है। फिर इस पानी में जीरा, अजवाइन और लहसुन को पीस

कर इस पानी में डाला जाता है। साथ ही स्वादानुसार नमक मिलाकर इस पूरे मिश्रण को आंच पर बहुत देर तक अच्छी तरह उबलने के लिए रख दिया जाता है, ताकि लहसुन और सभी मसाले पानी में घुल सकें। जब यह पानी पूरी तरह से उबल जाता है, तो उस उबलते हुए पानी में धीरे-धीरे आटा डाला जाता है। आटा डालते ही उसे कड़छी या लकड़ी के डंडे से लगातार बहुत देर तक तेजी से घुमाया जाता है ताकि आटे में गांठें न पड़ें और वह बर्तन से न चिपके। फिर अच्छी तरह घोलने के बाद, इसे थोड़ी देर के लिए बिल्कुल धीमी आंच पर रखा जाता है ताकि आटा पूरी तरह से पक जाए और उसका कच्चापन खत्म हो जाए। इसे थाली में निकालकर बीच में एक गड्डा किया जाता है और उसमें खूब सारा देसी घी भरकर गरमा-गरम परोसा जाता है।

मक्की की रोटी : मक्की के आटे से गरम-गरम रोटियां बनाई जाती हैं, जिसे सर्दियों का मुख्य आहार माना जाता है। यह ठंड के दिनों में शरीर को लंबे समय तक ऊर्जा प्रदान करती है।

सरसों का साग : सर्दियों में ताजे हरे सरसों के पत्तों को उबालकर और घोटकर साग बनाया जाता है। इसे मक्के की रोटी और सफेद मक्खन के साथ परोसा जाता है।

गाजर का हलवा और गजक : सर्दियों की मीठी लाल गाजर से बना हलवा, और गुड़, मूंगफली व तिल से बनी कुरकुरी गजक सर्दियों के मुख्य मीठे व्यंजन हैं। यह ठंड के दिनों में तुरंत एनर्जी देते हैं।

बाजरे की रोटी : बाजरे के आटे से रोटियां तैयार की जाती हैं। बाजरा एक गर्म अनाज (Millets) है, जो सर्दियों में शरीर के तापमान को नियंत्रित रखने में सहायक होता है।

सर्दियों का यह पारंपरिक भोजन इस बात का प्रमाण है कि हमारा पुराना खान-पान पूरी तरह से स्वास्थ्य विज्ञान पर आधाारित था, जो मौसम के अनुसार शरीर को संतुलित रखता है।

My Learning & Experience : इस कार्य को पूरा करने का अनुभव मेरे लिए बहुत ही अनोखा और ज्ञानवर्धक रहा। शिक्षकों द्वारा दी गई इस गतिविधि के माध्यम से मुझे कई ऐसी बातें और इतिहास पता चले, जिनकी जानकारी मुझे पहले बिल्कुल नहीं थी। शिक्षकों द्वारा दिए गए इस कार्य ने न केवल मेरा ज्ञान बढ़ाया, बल्कि मुझे अपनी जड़ों, इतिहास और अनूठी पहाड़ी संस्कृति को एक नए नजरिए से देखने और समझने का अवसर दिया।

जानकारी के स्रोत :

दादी जी का विवरण :

नाम : श्रीमती खिमी देवी

उम्र : 65 वर्ष

योगदान : पहाड़ी संस्कृति के पारंपरिक व्यंजनों की मूल विधि, इतिहास और उनके स्वास्थ्य लाभों (औषधीय गुणों) की प्रामाणिक जानकारी दी।

माता जी का विवरण :

नाम : श्रीमती सावित्री देवी

उम्र : 39 वर्ष

योगदान : पारंपरिक पहाड़ी पकवानों को बनाने की सटीक विधि, सामग्री के सही अनुपात और रसोई के विशेष सुझावों को साझा किया।

- राजकीय महाविद्यालय, पनारसा, जिला मण्डी, हि.प्र.।

मेरी दादी का नाश्ता हमारी रसोई की परंपरा

दिव्यमोल

भारतीय घरों की रसोई केवल भोजन पकाने की जगह नहीं होती, बल्कि यह हमारी संस्कृति, पारिवारिक प्रेम और परंपराओं का महत्वपूर्ण हिस्सा होती है। दादी और नानी के हाथों से बने भोजन में एक अलग स्वाद और अपनापन होता है। आज के समय में फास्ट फूड, बेकरी की चीजें और रेडीमेड भोजन का उपयोग अधिक हो गया है, लेकिन पुराने समय में घर पर बने पोष्टिक भोजन को अधिक महत्व दिया जाता था।

मैंने अपनी दादी से पूछा कि लगभग तीस वर्ष पहले घर का नाश्ता कैसा होता था। दादी ने बताया कि उस समय सभी लोग बहुत सुबह उठ जाते थे और घर के कामों में मदद करते थे। सुबह बनाया जाने वाला भोजन स्वास्थ्य और शरीर के लिए बहुत लाभदायक होता था। उस समय बाजार से खाने की चीजें खरीदने की बजाय घर में ही भोजन तैयार किया जाता था।

दादी ने बताया कि पुराने समय में हमारे घर में नाश्ते में पुरी, इडली, डोसा, कांजी, केला और नारियल की चटनी अधिक खाई जाती थी। खेतों में काम करने वाले लोगों को ताकत की जरूरत होती थी, इसिलए पोष्टिक भोजन बनाया जाता था। उस समय गैस स्टोव नहीं था, इसलिए अधिकतर खाना लकड़ी के चूल्हे पर पकाया जाता था। इससे भोजन का स्वाद भी अलग और अच्छा होता था।

आज के समय में खाने की आदतों में बहुत बदलाव आ गया है। कई लोग व्यस्त जीवन के कारण सुबह केवल चाय और बिस्कुट खाकर निकल जाते हैं। बच्चे स्कूल और बड़े लोग काम पर जल्दी जाने के कारण परिवार के साथ बैठकर खाना कम खाते हैं। लेकन पहले सभी लोग एक साथ बैठकर भोजन करते थे। इससे परिवार में प्रेम और एकता बढ़ती थी।

दादी के अनुसार पुराने समय का भोजन स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छा था। सब्जियाँ और मसाले घर में ही तैयार किए जाते थे। भोजन में किसी प्रकार के रासायनिक पदार्थ या मिलावट नहीं होती थी। आज के फास्ट फूड में अधिक तेल और रसायन होने के कारण स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ बढ़ रही हैं। पुराने समय में भोजन को भगवान का आशीर्वाद माना जाता था। भोजन कभी बर्बाद नहीं किया जाता था। खाना खाने से पहले भगवान को धन्यवाद देने की आदत भी थी। आज की पीढ़ी में भोजन को बर्बाद करने की आदत बढ़ती जा रही है। इसलिए हमें पुरानी पीढ़ी से भोजन का महत्व सीखना चाहिए। 'मेरी दादी का नाश्ता' केवल भोजन के बारे में जानकारी नहीं देता, बल्कि यह हमारी संस्कृति और पारिवारिक परंपराओं की पहचान भी है। पुराने समय की भोजन पद्धति स्वास्थ्य के लिए अच्छी और प्रकृति के करीब थी। इसलिए हमें अपने पारंपिरक भोजन को भूलना नहीं चाहिए।

इसी विषय को लिखते समय मुझे यह समझ में आया कि दादी-नानी के अनुभव बहुत मूल्यवान होते हैं। उनसे हमें केवल भोजन बनाने की विधा ही नहीं, बल्कि जीवन जीने का सही तरीका भी सीखने को मिलता है।

अंत में मैं कहना चाहूँगी कि हमारी पारंपिरक भोजन संस्कृति हमारे देश की पहचान है। इसे आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाना हमारा कर्तव्य है।

M-A- Hindi

मेरी रसोई, मेरी विरासत

आशा देवी

हिमाचल की रसोई केवल भोजन बनाने की जगह नहीं है, बल्कि यह हमारी संस्कृति, परंपराओं और पारिवारिक मूल्यों का प्रतीक है। हर घर की रसोई में कुछ विशेष व्यंजन और उनसे जुड़ी यादें होती हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ती हैं।

मेरे घर में भी कई पारंपरिक व्यंजन बनाए जाते हैं। त्योहारों और विशेष अवसरों पर परिवार के सभी सदस्य मिलकर भोजन तैयार करते हैं। इससे न केवल स्वादिष्ट भोजन बनता है, बल्कि परिवार के बीच प्रेम और अपनापन भी बढ़ता है।

हमारी रसोई की यही परंपराएँ हमारी विरासत हैं। इन्हें सहेजकर रखना और अगली पीढ़ी तक पहुँचाना हम सभी की जिम्मेदारी है।

1. **मेरी दादी का नाश्ता**

- छल्ली की रोटी और चाय
- कोदेरे की रोटी
- सरैरे की रोटी

मेरी दादी और नानी ने बताया कि उनके समय में सुबह के नाश्ते में छल्ली की रोटी और चाय, कोदेरे की रोटी तथा सरैरे की रोटी खाई जाती थी। ये सभी पारंपरिक और पौष्टिक खाद्य पदार्थ थे, जो घर में उपलब्ध अनाजों से बनाए जाते थे। उस समय लोग प्राकृतिक और घर का बना भोजन अधिक खाते थे। आज के समय में इन पारंपरिक खाद्य पदार्थों की जगह ब्रेड, बिस्कुट, सैंडविच और अन्य तैयार खाद्य पदार्थों ने ले ली है। इस प्रकार पहले और आज के खान-पान में काफी अंतर देखने को मिलता है।

- छल्ली की रोटी 'मक्की की रोटी' के साथ कुंगश की चटनी, साग या फाफरे की सब्जी
- बनाने की विधि : मक्की की रोटी साधारण रोटी की तरह ही बनाई जाती है, लेकिन पहले के समय में इसे चूल्हे पर आग जलाकर या तंदूर पर पकाया जाता है । इससे रोटी का स्वाद और सुगंध दोनों बढ़ जाते थे।

कुंगश की चटनी 'बिच्छू बूटी की चटनी' बनाने के लिए बिच्छू बूटी को साफ करके पत्थर पर बारीक पीसा जाता था। इसके बाद इसमें पारंपरिक तड़का लगाया जाता था। उस समय तड़के में मुख्य रूप से लहसुन, सूखा धानिया, नमक, हल्दी और मिर्च का उपयोग किया जाता था। यह चटनी खाने में बहुत स्वादिष्ट होती है । साग और फाफरे की सब्जी बनाने के लिए पहले इन्हें अच्छी तरह धोकर और काटकर पकाया जाता था। पकने के बाद इनमें भी वही पारंपरिक तड़का लगाया जाता था जो चटनी में लगाया जाता था। इससे सब्जी का स्वाद और भी बढ़ जाता था।

मक्की की रोटी के साथ कुंगश की चटनी, साग और फाफरे की सब्जी खाने का बहुत ज्यादा मजा आता है। यह भोजन पौष्टिक होने के साथ-साथ बहुत स्वादिष्ट भी होता था। हमारे घर में आज भी यह पारंपरिक भोजन बनाया जाता है, जिससे हमारी पुरानी खाद्य विरासत आज भी जीवित है।

घी बाड़ी :

बनाने की विधि : मेरी दादी, नानी और हमारे पूर्वजों के समय बाड़ी बहुत अधिक पसंद की जाती थी। इसे एक पौष्टिक, स्वादिष्ट और ताकत देने वाला पारंपरिक भोजन माना जाता था। यह देसी अनाज के आटे से बनाई जाती है, इसलिए स्वास्थ्य के लिए भी बहुत लाभदायक होती है। पहले के समय में बाड़ी चूल्हे पर बनाई जाती थी। चूल्हे पर बनी बाड़ी का स्वाद और सुगंध अलग ही होती थी। आज के समय में इसे गैस पर भी बनाया जाता है, लेकिन चूल्हे पर बनी बाड़ी का स्वाद अधिक अच्छा माना जाता है।

बाड़ी बनाने के लिए सबसे पहले कढ़ाई में आवश्यकतानुसार पानी लिया जाता है। इसके बाद उसमें कुछ चम्मच घी डाला जाता है और पानी को अच्छी तरह गर्म या उबलने दिया जाता है। बाड़ी मुख्य रूप से तीन प्रकार की बनाई जाती है- नमकीन, मीठी और नमकीन-मीठी।

नमकीन बाड़ी के लिए पानी में नमक डाला जाता है। मीठी बाड़ी के लिए गुड़ का प्रयोग किया जाता है। वहीं नमकीन-मीठी बाड़ी के लिए नमक और गुड़ दोनों मिलाए जाते हैं। आजकल कुछ लोग गुड़ की जगह चीनी का भी उपयोग करते हैं।

इसके बाद आटा डालकर मिश्रण को लगातार चलाया जाता है ताकि उसमें गांठें न पड़ें। जितना अधिक और अच्छी तरह मिश्रण को चलाया जाता है,

बाड़ी उतनी ही अच्छी बनती है। पहले के समय में बाड़ी बनाने के लिए विशेष लकड़ी की कड़छी का उपयोग किया जाता था। हमारे घर में वह कड़छी आज भी सुरक्षित है और उसी से बाड़ी बनाई जाती है। लगातार चलाने से बाड़ी मुलायम, सॉफ्ट और स्वादिष्ट बनती है। इसे बनने में अधिाक समय नहीं लगता और यह लगभग 15 से 25 मिनट में तैयार हो जाती है।

जब बाड़ी अच्छी तरह पक जाती है, तो उसे काँसे की थाली में परोसा जाता है। परोसते समय बाड़ी के बीच में एक छोटा-सा गड्डा बनाया जाता है, जिसमें घी डाला जाता है। घी के साथ खाई जाने वाली यह बाड़ी बहुत स्वादिष्ट लगती है। हमारे घर में आज भी इसे पारंपरिक तरीके से बनाया जाता है और यह परिवार के सभी सदस्यों को बहुत पसंद है। यह हमारी खाद्य विरासत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो स्वाद के साथ-साथ स्वास्थ्य का भी धयान रखती है।

फिमड़ा : फिमड़ा हमारे पूर्वजों का पारंपरिक और पौष्टिक भोजन

बनाने की विधि : हमारे पूर्वजों के समय फिमड़ा बहुत लोकप्रिय और पौष्टिक भोजन माना जाता था। यह अलग-अलग प्रकार के अनाजों से बनाया जाता था। फिमड़ा स्वादिष्ट होने के साथ-साथ शरीर को ताकत भी देता था, इसलिए इसे विशेष रूप से पसंद किया जाता था।

फिमड़े के प्रकार

1. **काऊणी का फिमड़ा :** काऊणी एक प्रकार का पारंपरिक अनाज है। पहले के समय में कौणी को 'पत्थर की मशीन' में कूटकर बारीक किया जाता था। इसके बाद उसे अच्छी तरह धोकर पतीले में पानी के साथ पकाया जाता था। पकने के बाद यह खाने में बहुत स्वादिष्ट और पौष्टिक होता था। कौणी की रोटी भी बनाई जाती थी।

2. **सरैरे का फिमड़ा :** सरैरे के अनाज से भी फिमड़ा बनाया जाता था। इसे भी पत्थर की मशीन में तैयार करके धोया जाता था और फिर पतीले में पकाया जाता था। यह भोजन शरीर को ताकत देने वाला माना जाता था। सरैरे की रोटी भी बनाई जाती थी।

3. **मक्की का फिमड़ा :** मक्की को पत्थर की मशीन में कूटकर तैयार किया जाता था। इसके बाद उसे पानी

में पकाया जाता था। स्वाद बढ़ाने के लिए इसमें सूखा धनिया, मिर्च, लहसुन, नमक और हल्दी जैसे मसाले डाले जाते थे। यह फिमड़ा बहुत स्वादिष्ट और ताकतवर माना जाता था।

4. **धान (चावल) का फिमड़ा :** धान अर्थात चावल का फिमड़ा भी बनाया जाता था। इसे बनाने के लिए चावल और लस्सी को पतीले में डालकर पकाया जाता था। यह खाने में बहुत स्वादिष्ट होता था और लोगों द्वारा बड़े चाव से खाया जाता था।

5. **कद्दू का फिमड़ा :** कद्दू को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर पकाया जाता था। इसमें गुड़ और सरैरा मिलाया जाता था, जिससे इसका स्वाद और भी बढ़ जाता था। यह हल्का मीठा और बहुत स्वादिष्ट व्यंजन माना जाता था।

निष्कर्ष : फिमड़ा हमारे पूर्वजों की खाद्य विरासत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह स्थानीय अनाजों से बनाया जाता था और स्वास्थ्य के लिए लाभदायक माना जाता था। आज भले ही यह व्यंजन कम देखने को मिलता हो, लेकिन यह हमारी पारंपरिक रसोई और संस्कृति की एक अनमोल पहचान है।

स्वादिष्ट दाल व बनाने की विधि : हमारे दादा-दादी और पूर्वजों के समय खेतों में राजमा और माश दाल उगाई जाती थी। उस समय दाल बनाने का तरीका आज की तुलना में काफी अलग था। उस समय प्रेशर कुकर नहीं होते थे, इसलिए दाल को पतीले या चामडू में धीमी आँच पर पकाया जाता था।

दाल पक जाने के बाद उसे एक अलग तरीके से तड़का लगाया जाता था। उस समय गाँवों में गरीबी अधिक थी और मसाले भी आसानी से उपलब्ध नहीं होते थे। इसलिए लोग साधारण सामग्री का ही उपयोग करते थे। मुझे यह जानकर बहुत हैरानी हुई कि उस समय तड़का लगाने के लिए कढ़ाई की जगह कड़छी का प्रयोग किया जाता था। तड़का लगाने के लिए एक कड़छी में तेल डाला जाता था, और यदि तेल उपलब्ध न हो तो घर का बना गाय का देसी घी इस्तेमाल किया जाता था।

इसके बाद उसमें धनिया, लहसुन, मिर्च, हल्दी और नमक डाला जाता था। यही कुछ सामान्य सामग्री उस समय घरों में उपलब्ध होती थी। कड़छी को चूल्हे या तंदूर की आग पर रखकर तड़का तैयार किया जाता था। जब लहसुन, धनिया और मसाले अच्छी तरह भुन जाते थे, तब इस तड़के को दाल में मिला दिया जाता था। यही उस समय दाल बनाने का पारंपरिक तरीका था।

आज के समय में दाल बनाने के लिए कई प्रकार के मसालों और आधुनिक तरीकों का उपयोग किया जाता है। फिर भी मेरे दादाजी का कहना है कि पहले के समय की दाल का स्वाद कुछ अलग ही होता था। कम मसालों और साधारण सामग्री से बनी वह दाल बहुत स्वादिष्ट लगती थी और परिवार के सभी सदस्य उसे बड़े चाव से खाते थे। उनके अनुसार आज भले ही दाल में अधिक मसाले डाले जाते हों, लेकिन पहले जैसी सादगी और स्वाद अब बहुत कम देखने को मिलता है।

यह दाल हमारे पूर्वजों की सादगी, मेहनत और पारंपरिक खान-पान की एक सुंदर पहचान है।

यह मेरे दादा दादी का 50-60 साल पहले का घर है जो कि आज भी है। यह ऊपर वाला कमरा उनकी रसोई थी और यही वे सोते थे और नीचे अपने पशुओं को रखते थे उस समय बहुत पशु पाले जाते थे भेड़ , बकरियां गाय और खेतों में हल जोतने के लिए बैल भी रखे जाते थे।

चावल हमारी थाली में : चावल हमारे भोजन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। हमारे घर में चावल से कई प्रकार के व्यंजन बनाए जाते हैं। चावल स्वादिष्ट होने के साथ-साथ पौष्टिक भी होता है और हमारे दैनिक भोजन में विशेष स्थान रखता है।

1. **साधाारण चावल :** हमारे घर में सबसे अधिक साधारण चावल बनाए जाते हैं। इन्हें पानी में उबालकर तैयार किया जाता है और दाल, राजमा या सब्जी के साथ खाया जाता है।

2. **खीर :** चावल से खीर भी बनाई जाती है। इसे दूध, चावल और गुड़ या चीनी से तैयार किया जाता है। त्योहारों

और विशेष अवसरों पर खीर बनाई जाती है।

3. **मीठे चावल :** मीठे चावल हमारे घर में विशेष अवसरों पर बनाए जाते हैं। इन्हें गुड़ या चीनी के साथ पकाया जाता है और सूखे मेवे भी डाले जाते हैं।

4. **धान का फिमड़ा :** हमारे पूर्वजों के समय धान (चावल) का फिमड़ा भी बनाया जाता था। इसे चावल और लस्सी के साथ पकाया जाता था और यह बहुत स्वादिष्ट माना जाता था।

5. **चावल की खिचड़ी :** हमारे घर में चावल की खिचड़ी भी बनाई जाती है। इसे चावल और दाल को मिलाकर बनाया जाता है। खिचड़ी हल्की, पौष्टिक और पचने में आसान होती है। जब किसी की तबीयत ठीक न हो या हल्का भोजन खाना हो, तब खिचड़ी बनाई जाती है। हमारे घर में आज भी चावल की खिचड़ी बड़े चाव से खाई जाती है।

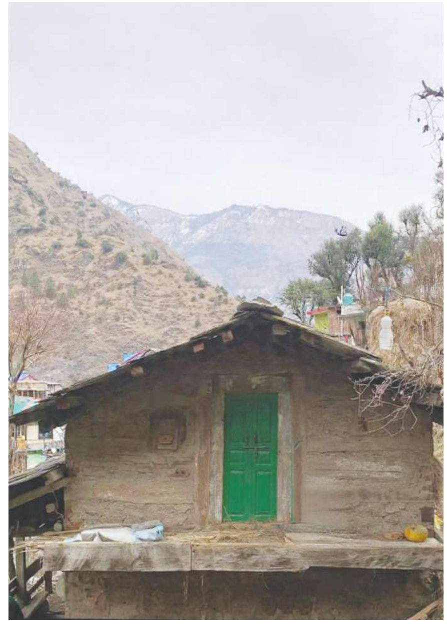

6. **ब्रंज (पुलाव) :** हमारे घर में चावल से ब्रंज (पुलाव) भी बनाया जाता है। यह एक स्वादिष्ट व्यंजन है, जिसे सभी लोग पसंद करते हैं। ब्रंज बनाने में अधिक समय नहीं लगता, इसलिए जब कभी जल्दी होती है या कम समय में भोजन तैयार करना होता है, तब हमारे घर में ब्रंज बनाया जाता है।

ब्रंज बनाने के लिए सबसे पहले कुकर में थोड़ा तेल या घी गर्म किया जाता है। इसके बाद उसमें हल्का तड़का लगाया जाता है और कुछ सब्जियाँ डालकर भुना जाता है। फिर धुले हुए चावल मिलाकर आवश्यकतानुसार पानी डाला जाता है और कुकर में पकाया जाता है। पकने के बाद यह बहुत स्वादिष्ट और सुगंधित बनता है। हमारे घर में आज भी ब्रंज (पुलाव) बड़े चाव से खाया जाता है और यह चावल से बनने वाले पसंदीदा व्यंजनों में से एक है।

अचार का डिब्बा/घड़ा : हमारे घर में कई प्रकार के अचार बनाए जाते हैं। अचार हमारे भोजन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। गांव में सब्जियों और फलों को लंबे समय तक चलाने के लिए आचार डाले जाते हैं । मेरी दादी ने मुझे बताया कि अलग-अलग मौसम में अलग-अलग प्रकार के अचार बनाए जाते हैं। हमारे घर में लिंगड़, गलगल, हरे मटर और लाल टमाटर का अचार बनाया जाता है।

1. **लिंगड़ का अचार :** लिंगड़ का अचार बनाने के लिए सबसे पहले लिंगड़ को अच्छी तरह साफ करके हल्का उबाला जाता है। इसके बाद उसे सुखाया जाता है। फिर उसमें राई, मिर्च, मैथी, तेल, हल्दी और नमक मिलाकर अचार तैयार किया जाता है।

अचार बनाने का मौसम : मई से जुलाई

2. **गलगल का अचार :** गलगल का अचार बनाने के लिए गलगल को उबालकर छोटे-छोटे टुकड़ों में काटा जाता है। इसके बाद उसमें राई, मिर्च, मैथी, तेल, हल्दी और नमक मिलाया जाता है। अचार तैयार होने के बाद उसे कुछ समय के लिए रखा जाता है, जिससे उसका स्वाद और भी अच्छा हो जाता है।

अचार बनाने का मौसम : जनवरी से मार्च

3. **हरे मटर का अचार :** हरे मटर का अचार बनाने के लिए मटर को पहले उबाला जाता है। इसके बाद उसमें राई, मिर्च, मैथी, तेल, हल्दी और नमक मिलाया जाता है।

अचार बनाने का मौसम : अप्रैल से जून

4. **लाल टमाटर का अचार :** लाल टमाटर का अचार बनाने के लिए टमाटरों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटा जाता

है। टमाटर में अधिक पानी होने के कारण उसका अतिरिक्त पानी निकाल दिया जाता है। इसके बाद उसमें राई, मिर्च, मैथी, तेल, हल्दी और नमक मिलाकर अचार तैयार किया जाता है।

अचार बनाने का मौसम : मई से सितंबर/अक्टूबर

विशेष जानकारी : मेरी दादी ने मुझे बताया कि अचार में सूखा धनिया नहीं डाला जाता है, क्योंकि इससे अचार खराब हो सकता है। इसलिए अचार में मुख्य रूप से राई, मिर्च, मैथी, तेल, हल्दी और नमक का उपयोग किया जाता है।

4. **त्योहार की खास डिश :** हमारे घर में विभिन्न त्योहारों और विशेष अवसरों पर कई स्वादिष्ट व्यंजन बनाए जाते हैं। इन व्यंजनों का हमारे परिवार और संस्कृति से गहरा संबंधा है।

1. **भल्ले और बोबरू :** हमारे यहाँ साजा-माघ (लोहड़ी) के अवसर पर भल्ले और बोबरू बनाए जाते हैं। यह हमारे त्योहार की एक विशेष पहचान है।

भल्ले माह से बनाए जाते हैं। माह को पहले पानी में भिगोकर रखा जाता है। इसके बाद उसे पीसकर मिश्रण तैयार किया जाता है और फिर तेल में तलकर भल्ले बनाए जाते हैं। भल्ले हमारे साजे-माघ के त्योहार का नमकीन पकवान माने जाते हैं।

बोबरू मिठास के लिए बनाए जाते हैं। इन्हें आटे और गुड़ से तैयार किया जाता है। गुड़ को पानी में घोलकर आटे में मिलाया जाता है। इसके बाद छोटे-छोटे गोल आकार के बोबरू बनाकर तेल में तला जाता है। ये खाने में बहुत स्वादिष्ट होते हैं।

2. **सौले (कचौरी):** हमारे यहाँ एक विशेष साजे के अवसर पर सौले बनाए जाते हैं। यह हमारे क्षेत्र का एक विशेष व्यंजन है। सौले के अंदर मुख्य रूप से आलू और अखरोट की स्टफिंग भरी जाती है। इसके बाद इन्हें तैयार करके तेल में पकाया जाता है। सौले खाने में बहुत स्वादिष्ट होते हैं और त्योहारों की रौनक बढ़ा देते हैं।

3. **सिड्डू :** हमारे यहाँ शिवरात्रि, दीपावली, जन्मदिन और अन्य विशेष अवसरों पर सिड्डू बनाए जाते हैं।

सिड्डू बनाने के लिए आटे में यीस्ट मिलाकर उसे कई घंटों तक रखा जाता है ताकि आटा अच्छी तरह फूल जाए। सर्दियों में आटा फूलने में अधिक समय लगता है, इसलिए इसे पहले से गूंधकर रखा जाता है। इसके बाद सिड्डू में आलू, अखरोट, दली माह या अन्य प्रकार की स्टफिंग भरी जाती है। फिर इसे सिड्डू का आकार देकर (momo maker) भाप में पकाया जाता है। सिड्डू को देसी घी, चटनी और दूध के साथ खाया जाता है। यह बहुत स्वादिष्ट और पौष्टिक व्यंजन माना जाता है।

भले, बब्बरू, सौले और सिड्डू हमारे त्योहारों की विशेष पहचान हैं। ये व्यंजन हमारे परिवार की परंपराओं और सांस्कृतिक विरासत को दर्शाते हैं। आज भी हमारे घर में त्योहारों और विशेष अवसरों पर इन्हें बड़े उत्साह के साथ बनाया जाता है। यह हमारे घर में बनने वाले (सौले) कचौरी के पुराने फोटो है।

यह फोटो हमारे इस बार के जनवरी के साजे (लोहड़ी) का है।

इसमें जो ये तेल के बने हुए गोल-गोल दिख रहे हैं ये भल्ले (बौढ़े) हैं।

यह हमारे घर में बने सिड्डू के फोटो है।

5. **सर्दी का खाना :** सर्दियों के मौसम में हमारे घर में कई प्रकार के स्वादिष्ट और पौष्टिक खाद्य पदार्थ खाए जाते हैं। इनमें से अधिकतर चीजें हमारे खेतों या घर में उपलब्ध सामग्री से तैयार की जाती हैं। मेरे बुजुर्गों के अनुसार सर्दियों में ऐसे भोजन खाए जाते हैं जो शरीर को गर्म रखें और ताकत दें।

1. **मोड़ी (मक्की के पापकॉर्न):** हमारे खेतों में मक्की की विशेष छल्ली उगाई जाती है, जिससे मोड़ी 'पॉपकॉर्न'

बनाए जाते हैं। मक्की की इन छल्लियों को अच्छी तरह सुखाकर सर्दियों के लिए सुरक्षित रखा जाता है। सर्दियों में इन्हें जलाकर पॉपकॉर्न तैयार किए जाते हैं। घर में बनी मोड़ी खाने में बहुत स्वादिष्ट होती है और बाजार के पॉपकॉर्न से भी अधिक अच्छी लगती है।

2. **मूंगफली, गजक और गुड़ :** सर्दियों में हमारे घर में मूंगफली, गजक और गुड़ भी खूब खाए जाते हैं। मूंगफली को भूनकर खाया जाता है। ये खाद्य पदार्थ शरीर को गर्म रखने में मदद करते हैं और सर्दियों में विशेष रूप से पसंद किए जाते हैं।

3. **धाणा :** धाणा भी सर्दियों में खाए जाते हैं। इन्हें भूनकर या जलाकर खाया जाता है। यह सर्दियों का एक स्वादिष्ट नाश्ता माना जाता है।

4. **मक्की की रोटी और साग :** सर्दियों में मक्की की रोटी और साग हमारे भोजन का महत्वपूर्ण हिस्सा होते हैं। यह भोजन शरीर को गर्म रखने के साथ-साथ स्वादिष्ट भी होता है।

5. **फाफरे की सब्जी छल्ली की रोटी :** फाफरे की सब्जी एक प्राकृतिक सब्जी है, जो सामान्यत: बाजार में नहीं मिलती। यह जंगलों और गाँवों में खेतों में पाई जाती है। मेरे बुजुर्गों के अनुसार यह सब्जी बहुत पौष्टिक होती है और इसमें कई प्रकार के पोषक तत्व पाए जाते हैं। सर्दियों में इसे मक्की की रोटी के साथ बड़े चाव से खाया जाता है।

6. **माश की दाल और भटूरू :** सर्दियों में माश की दाल और छल्ली भटूरू (रोटी) भी बनाये जाते है। यह भोजन स्वादिष्ट होने के साथ-साथ शरीर को ताकत देने वाला माना जाता है।

7. **खिचड़ी :** सर्दियों के मौसम में खिचड़ी भी बनाई जाती है। घी के साथ खाई जाने वाली खिचड़ी स्वादिष्ट और पौष्टिक होती है।

8. **सौले (कचौरी) :** सर्दियों में सौले (कचौरी) भी बनाए जाते हैं। इन्हें आलू या अखरोट की स्टफिंग के साथ तैयार किया जाता है। यह सर्दियों का एक पसंदीदा व्यंजन है।

मेरी सीख : इस गतिविधि के माध्यम से मुझे अपने घर के पारंपरिक खान-पान और सर्दियों में खाए जाने वाले खाद्य पदार्थों के बारे में बहुत कुछ जानने को मिला। मुझे यह समझ आया कि हमारे बुजुर्ग मौसम के अनुसार ऐसे भोजन चुनते थे जो शरीर को गर्म रखें, ताकत दें और स्वास्थ्य के लिए लाभदायक हों। इससे मुझे अपनी खाद्य संस्कृति और पारिवारिक विरासत के बारे में नई जानकारी प्राप्त हुई।

हमें अपनी इस खाद्य विरासत को संजोकर रखना चाहिए।

- राजकीय महाविद्यालय, पनारसा,
ज़िला मण्डी, हि.प्र.।

त्योहारों के स्वाद में बसी हिमाचल की संस्कृति

रेखा

त्योहार केवल पूजा-पाठ और खुशियाँ मनाने का अवसर नहीं होते बल्कि वे हमारी संस्कृति, परंपराओं और खान-पान को भी जीवित रखते हैं। जब मुझे इस विषय पर लिखने के लिए कहा गया तो मैंने अपनी दादी पार्वती देवी, नाना ढले राम जी, बुआ, मासी और अन्य रिश्तेदारों से बातचीत की। वे हिमाचल प्रदेश के अलग-अलग क्षेत्रों में रहते हैं। उनसे बात करके मुझे पता चला कि एक ही त्योहार को अलग-अलग जगहों पर अलग तरीके से मनाया जाता है और खाने के व्यंजन भी अलग होते हैं।

मेरी दादी ने बताया कि पहले त्योहारों का इंतज़ार केवल नए कपड़ों या मेलों के लिए नहीं, बल्कि घर में बनने वाले विशेष पकवानों के लिए भी किया जाता था। त्योहार आने से कई दिन पहले ही घरों में तैयारियाँ शुरू हो जाती थीं।

1. **मकर संक्रांति (लोहड़ी और माघ के साजे का पर्व) :** लोहड़ी हिमाचल प्रदेश के कई क्षेत्रों, विशेषकर कुल्लू घाटी में बड़े उत्साह के साथ मनाई जाती है। यह पर्व हर वर्ष 13 और 14 जनवरी को मनाया जाता है। पहाड़ी पंचांग के अनुसार यह त्योहार पौष महीने के अंतिम दिन और माघ महीने के पहले दिन मनाया जाता है। हमारे यहाँ पौष महीने के अंतिम दिन को लोहड़ी और माघ महीने के पहले दिन को 'माघ का साजा' मकर संक्रांति कहा जाता है। यह त्योहार मेरे लिए विशेष महत्व रखता है क्योंकि लोहड़ी वाले दिन मेरा जन्मदिन भी होता है।

मैंने इस सभी त्योहारों के बारे में अपनी दादी पार्वती देवी, नाना ढाले राम जी, बुआ और मासी से जानकारी प्राप्त की। सभी ने अपने-अपने क्षेत्र की परंपराओं के बारे में बताया।

- पहला दिन- लोहड़ी (पौष का अंतिम दिन) : लोहड़ी के दिन घरों में विशेष तैयारी की जाती है।
- माह (उड़द) की दाल से भले/बोड़े ओर खिचड़ी बनाई जाती हैं।
- परिवार के सभी सदस्य एक साथ बैठकर भोजन करते हैं।
- कई घरों में रिश्तेदारों को भी भले भेजे जाते हैं।
- सर्दियों के मौसम को ध्यान में रखते हुए घी और दाल से बने पौष्टिक भोजन तैयार किए जाते हैं।
- कुछ परिवारों में शाम को रिश्तेदारों और पड़ोसियों से मिलने की शुरुआत भी हो जाती है।

दूसरा दिन - माघ का साजा (माघ का पहला दिन)/(मकर संक्रांति) : साजे वाले दिन सुबह से ही त्योहार का माहौल होता है।

- लोग नए या साफ-सुथरे कपड़े पहनते हैं।
- छोटे बच्चे और युवा अपने से बड़े लोगों के घर जुब देने जाते हैं।
- बड़े लोग आशीर्वाद देते हैं और बदले में मूंगफली, रेवड़ी, गुड़, भले (बोड़े) तथा अन्य खाने की चीजें देते हैं।
- परिवार और रिश्तेदार एक-दूसरे के घर जाकर भोजन करते हैं।
- कई स्थानों पर शाम को अलाव (अग्नि) भी जलाया जाता है और लोग मिलकर त्योहार मनाते हैं।

साजे की विशेष डिश/बबरू (बोबरू) : साजे की शाम को हमारे घर में बबरू बनाए जाते हैं।

- बबरू गेहूँ के आटे से बनाया जाता है।

- इसमें गुड़ के पानी का उपयोग किया जाता है।
- कई घरों में इसमें सूखे मेवे भी डाले जाते हैं।
- इसे घी या तेल में पकाया जाता है।
- इसका स्वाद मीठा होता है और यह लोहड़ी की सबसे पसंदीदा डिशों में से एक मानी जाती है।

मेरी बुआ, जिन्हें हमारी पहाड़ी बोली में जाई कहा जाता है, जब भी माघ महीने में हमारे घर आती हैं तो फिर से बबरू और बोड़े बनाए जाते हैं। इस कारण लोहड़ी की खुशियाँ केवल एक दिन तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि पूरे माघ महीने तक त्योहार जैसा वातावरण बना रहता है।

2. **जन्माष्टमी : मेरे गाँव का विशेष त्यौहार :** जन्माष्टमी यह त्योहार मेरे गाँव सारी तथा हमारे देवते के मूल स्थान कंडा में बड़े उत्साह और श्रद्धा के साथ मनाया जाता है। इस अवसर पर आसपास के गाँवों के लोग भी शामिल होते हैं और पूरा क्षेत्र उत्सवमय हो जाता है।

सुबह देवता अपने मंदिर से निकलते हैं। मंदिर में धूप-दीप और पूजा-अर्चना की जाती है। इसके बाद देवता जी को मैदान की ओर ले जाया जाता है। हमारे गाँव के मैदान को पहाड़ी भाषा में 'सौह' कहा जाता है। इस दिन देवता जी के पास विशेष कुल्लवी धाम का आयोजन होता है।

कुल्लवी धाम का महत्व : जन्माष्टमी के अवसर पर हमारे गाँव में कुल्लवी धाम का आयोजन किया जाता है। यह इस उत्सव का सबसे महत्वपूर्ण भाग माना जाता है। गाँव के बुजुर्ग बताते हैं कि धाम केवल भोजन नहीं बल्कि प्रेम, सेवा और एकता का प्रतीक है। इस दिन सभी लोग एक साथ बैठकर भोजन करते हैं।

धाम में सामान्यतः ये व्यंजन परोसे जाते हैं : खीर, रोटी, पुरिया, राजमाह, मटर पनीर, कड़ी, राइटा, माश की दाल, सेपू बड़ी, देसी घी।

धाम में भोजन परोसते समय देसी घी भी दिया जाता है, जिससे उसका स्वाद और बढ़ जाता है। कहा जाता है कि इस दिन धाम खाए बिना कोई भी व्यक्ति घर वापस नहीं जाता। यदि धाम बनने में देर हो जाए और किसी को भूख लग जाए, तो वह गाँव के किसी भी घर में जाकर भोजन कर सकता है। इस दिन लगभग हर घर में विशेष पकवान बनाए जाते हैं और आने वाले मेहमानों का स्वागत किया जाता है।

3. **भादर का साजा :** भादर का साजा हमारे क्षेत्र का एक पारंपरिक त्योहार है, जो पहाड़ी महीने भादर (भाद्रपद) में मनाया जाता है। यह त्योहार वर्षा ऋतु के दौरान आता है और गाँव के बच्चे तथा बड़े सभी इसमें उत्साह के साथ भाग लेते हैं। इस त्यौहार की सबसे विशेष बात 'डयनी' बनाने और उसे जलाने की परंपरा हैं।
- डयनी बनाने की परंपरा : साजे से एक दिन पहले या उसी दिन बच्चे और बड़े मिलकर डयनी बनाते हैं।
- डयनी का ढाँचा पुरानी लकड़ियों, टूटे हुए सामान या अन्य बेकार वस्तुओं से तैयार किया जाता है।
- इसके अंदर घास भरी जाती है।
- बाहर से विशेष प्रकार की घास, जिसे हमारे यहाँ भाग की घास कहा जाता है, लगाई जाती है।
- तैयार होने के बाद इसे गाँव में सुरक्षित स्थान पर रखा जाता है।

साजे की विशेष डिश/सुआले (कचौरियाँ) : इस त्यौहार पर शाम के समय सुआले बनाए जाते हैं, जिन्हें हिंदी में कचौरियाँ कहा जा सकता है।

सुआलों की विशेषताएँ : दोपहर को ही इसके लिए आटा तैयार कर लिया जाता है।
- रात को इन्हें बनाया जाता है।
- इनमें आलू, माह (उड़द) की दाल, अखरोट तथा अन्य किसी भी चीज की सामग्री की भराई की जाती है।
- इसके बाद इन्हें तेल में तलकर तैयार किया जाता है।
- सुआले इस त्योहार का सबसे महत्वपूर्ण भोजन माने जाते हैं।

डयनी जलाने की रस्म :
- रात के समय सभी लोग डयनी के पास एकत्रित होते हैं।
- तैयार किए गए सुआलों में से कुछ एक थाली में रखकर डयनी को अर्पित किए जाते हैं।
- इसके बाद डयनी को जलाया जाता है।
- डयनी जलते समय लोग उसे डंडों से मारते हैं।
- इस रस्म को पूरे उत्साह और आनंद के साथ निभाया जाता है।
- बच्चे और बड़े सभी इस अवसर पर एकत्रित होकर त्योहार का आनंद लेते हैं।

4. **हिंदू नव वर्ष (नव संवत्सर) :** नया सम्बत पहाड़ी पंचांग के अनुसार मनाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण पर्व है। यह पर्व नए वर्ष की शुरुआत का प्रतीक माना जाता है और पहाड़ी लोगों के जीवन में विशेष स्थान रखता है। इस दिन लोग आने वाले वर्ष के सुख-समृद्धि और अच्छे स्वास्थ्य की कामना करते हैं।

इस दिन की विशेष परंपराएँ :
- इस दिन घर-घर पंडित जी पत्री (पंचांग) सुनाने आते हैं।
- पंडित जी पूरे वर्ष के शुभ-अशुभ समय तथा ग्रह-नक्षत्रों की जानकारी देते हैं।
- परिवार के सदस्य श्रद्धापूर्वक पत्री सुनते हैं।
- पत्री सुनने के बाद पंडित जी को अनाज तथा दक्षिणा दान की जाती है।
- लोग नए वर्ष की मंगलकामना करते हैं और बड़ों का आशीर्वाद लेते हैं।

इस दिन के विशेष व्यंजन : इस दिन घरों में विशेष भोजन बनाया जाता है। मीठे चावल इस पर्व का सबसे महत्वपूर्ण व्यंजन माना जाता है।

इसके साथ-साथ राइटा, कढ़ी, पनीर, चावल, रोटियाँ भी बनाई जाती हैं। परिवार के सभी सदस्य एक साथ बैठकर भोजन करते हैं और नए वर्ष का स्वागत करते हैं।

5. **सैर (सैरी) का त्योहार :** सैर हिमाचल प्रदेश का एक पारंपरिक लोक त्योहार है। यह त्योहार नई फसल की खुशी में मनाया जाता है। हमारे क्षेत्र में इस दिन घरों में विशेष भोजन बनाया जाता है और रिश्तेदारों व पड़ोसियों से मिलकर शुभकामनाएँ दी जाती हैं।

इस दिन की विशेष परंपराएँ : लोग सुबह स्नान करके पूजा पाठ करते हैं।
- बड़ों का आशीर्वाद लिया जाता है।
- एक.दूसरे को शुभकामनाएँ और जुब दी जाती है, जैसे माघ के साजे में दी जाती है।
- परिवार और रिश्तेदार एक-दूसरे के घर जाते हैं।
- कई स्थानों पर नई फसल और कृषि से जुड़ी परंपराएँ भी निभाई जाती हैं।

सैर के विशेष व्यंजन : हमारे यहाँ सैर के दिन घर में कई प्रकार के पकवान बनाए जाते हैं। इनमें मुख्य रूप से हलवा, रोटी, खीर, राजमाह, दाल, मौसमी सब्जियाँ, अन्य पारंपरिक पकवान बनाए जाते हैं। परिवार के सभी सदस्य मिलकर भोजन करते हैं और त्योहार की खुशियाँ मनाते हैं।

सर्दियों का खाना

1. **कुग्श की चटनी :** सर्दियों में हमारे क्षेत्र में कुग्श की चटनी बहुत पसंद की जाती है। कुग्श एक छोटा जंगली पौधा होता है, जो खेतों और जंगलों के आसपास उगता है। इसके पत्ते यदि शरीर को छू जाएँ तो जलन और छोटे.छोटे लाल दाने हो सकते हैं, इसलिए इसे सावधानी से तोड़ा जाता है।

मेरी दादी और परिवार के अन्य बुजुर्ग बताते हैं कि कुग्श की चटनी स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक मानी जाती है। सर्दियों में लोग इसे विशेष रूप

से खाते हैं। यह शरीर को गर्म रखने में मदद करती है और इसे पौष्टिक भोजन माना जाता है।

कुग्श की चटनी बनाने की विधि : कुग्श की कोमल पत्तियाँ इकट्ठी की जाती हैं।

- उन्हें अच्छी तरह धोया जाता है।
- फिर इसमें नमकए मिर्च, लहसुन और अन्य मसाले मिलाए जाते हैं।
- सभी सामग्री को पीसकर चटनी तैयार की जाती है।
- इसे रोटीए मक्की की रोटी या अन्य पारंपरिक भोजन के साथ खाया जाता है।

विशेषता **:** सर्दियों में अधिक खाई जाती है।

- पौष्टिक और पारंपरिक भोजन माना जाता है।
- हमारे क्षेत्र की लोक खाद्य परंपरा का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

2. **साग की सब्जी :** सर्दियों के मौसम में हमारे घर में साग की सब्जी बहुत पसंद की जाती है। साग हम अपने खेतों में उगाते हैं। इसके साथ कुछ अन्य जंगली हरी घासें और पत्तेदार पौधे भी खेतों में अपने आप उग जाते हैंए जिन्हें मिलाकर सब्जी बनाई जाती है। मेरी दादी बताती हैं कि पहले के समय में लोग सर्दियों में ऐसी हरी सब्जियाँ अधिक खाते थे क्योंकि ये शरीर को ताकत देती हैं।

साग की सब्जी की विशेषताएँ : सर्दियों में सबसे अधिक खाई जाती है।

- घर के खेतों में उगाई जाती है।
- कई बार अन्य हरी पत्तेदार घासों के साथ मिलाकर बनाई जाती है।
- मक्की की रोटी और लस्सी के साथ इसका स्वाद बहुत अच्छा लगता है।
- यह पारंपरिक पहाड़ी भोजन का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

साग खाने के फायदे : शरीर को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करता है।

- आयरन और विटामिन का अच्छा स्रोत माना जाता है।
- सर्दियों में शरीर को स्वस्थ रखने में मदद करता है।
- पाचन के लिए लाभदायक माना जाता है।
- घर में उगाई गई ताजी सब्जी होने के कारण शुद्ध और पौष्टिक होती है।

खाने का तरीका : हमारे घर में साग की सब्जी को रोटीए मक्की की रोटी और कभी-कभी घी के साथ खाया जाता है। सर्दियों में यह हमारे भोजन का महत्वपूर्ण हिस्सा होती है।

3. **फाफरे की सब्ज़ी :** फाफरे हिमाचल का एक जंगली साग/घास जैसा पौधा है, जो जंगलों में अपने आप उगता है। यह सर्दियों के जाते-जाते और गर्मियों के आने के समय ज्यादा मिलता है।

इसके बारे में लोक अनुभव : यह जंगलों में मिलने वाला एक जंगली साग है।

- इसे लोग तोड़कर सब्ज़ी बनाकर खाते हैं।
- इसका स्वाद हल्का खट्टा होता है।
- कई लोग कहते हैं कि इसे खाने से शरीर में ठंड लगती है।
- कुछ लोग यह भी बोलते हैं कि इसे खाने से शरीर में असर पड़ता है और हाथ-पैर काले पड़ जाते हैं। पर ये कुछ लोगों को ही होता हैं।

खाने का तरीका : इसे धोकर उबालते हैं।

- फिर मसालों के साथ सब्ज़ी बनाते हैं।
- मक्की की रोटी और घी के साथ खाया जाता है।

4. **मक्की की रोटी (छली की रोटी)/ हिमाचल की परंपरागत रोटी :** हिमाचल के पहाड़ी इलाकों में मक्की

की रोटी को 'छली की रोटी' भी कहा जाता है। यह खासकर सर्दियों में बहुत ज्यादा खाई जाती है, क्योंकि यह शरीर को गर्माहट देती है।

मक्की की रोटी के फायदे :

- ऊर्जा देती है। मक्की में कार्बोहाइड्रेट होती हैं, जो शरीर को लंबे समय तक ताकत देते हैं।
- सर्दी में गर्माहट देती है, इसे खाने से शरीर को ठंड कम लगती है और अंदर से गर्माहट बनी रहती है।
- दिल के लिए बेहतर मानी जाती है, इसमें अच्छे फाइबर होते हैं, जो कोलेस्ट्रॉल को कंट्रोल करने में मदद करते हैं।
- पाचन में मदद करती है, फाइबर होने की वजह से खाना पचाने में आसान होती है।
- लंबे समय तक पेट भरा रखती हैए इसे खाने के बाद जल्दी भूख नहीं लगती।

साथ में क्या अच्छा लगता है : - सरसों का साग, कढ़ी, घी या मक्खन

5. **'फागू की सब्ज़ी (फेगड़े/भरूणी की सब्जी) :** फागू की सब्जी पौष्टिक तो होती ही हैं वहीँ इसको खाने से शरीर की कई बीमारियाँ भी दूर होती हैं। फागू की सब्जी खाने से खारिश दूर होती है तथा यह रक्त को भी शुद्ध करने में सहायता करती है।

कैसे बनाते हैं : सबसे पहले इकट्ठा किए गए फागू के कच्चे फल और नरम पत्तों को कुकर में उबाल लें। कड़ाही में तेल गर्म करके उसमें गर्म मसाला, मिर्च, धनिया और प्याज को हल्की आंच में भूनें। उसके बाद टमाटर के साथ गरेबी बना लें। स्वादानुसार नमक, हल्दी डालें और कुछ देर तक भूनें। स्वाद बढ़ाने के लिए थोड़े मटर डालें और उन्हें थोड़ी देर तक पकाएं। उसके बाद उबले हुए फागू की सब्जी को मिलाएं और करीब 10 से 15 मिनट तक पकाएं।

6. **कराले की सब्जी (कचनार) :** प्रकृति ने कई पेड़ पौधों को औषधीय गुणों से भरपूर रखा है। इन्हीं में से एक कचनार का पेड़ भी है जो मार्च मध्य के बाद फूलों से लदने वाले इस पेड़ की पत्तियां, तना व फूल आदि सभी उपयोगी हैं। कचनार की गणना सुंदर व उपयोगी वृक्षों में होती है। इसकी अनेक प्रजातियां पाई जाती हैं। इनमें से गुलाबी कचनार का सबसे ज्यादा महत्व है।

कचनार के फायदे : कचनार के फूलों की कली लंबी, हरी व गुलाबी रंगत लिए हुए होती है। आयुर्वेद में इस वृक्ष को चामत्कारिक और औषधीय गुणों से भरपूर बताया गया है। कचनार के फूल और कलियां वात रोग, जोड़ों के दर्द के लिए विशेष लाभकारी हैं, इसकी कलियों की सब्जी व फूलों का रायता खाने में स्वादिष्ट और रक्त पित्त, फोड़े, फुंसियों को शांत करता है।

- राजकीय महाविद्यालय,
पनारसा, जिला मण्डी, हि.प्र.।

विषय : मेरी दादी का नाश्ता

अंजेला रेजी

भारत के अलग-अलग राज्यों की भोजन संस्कृति उनकी परंपरा और जीवनशैली को दर्शाती है। मैं केरल की रहने वाली हूँ और हमारे घर का पारंपरिक भोजन। हमारी संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस विषय के लिए मैंने अपनी दादी से बातचीत की और उनके समय के भोजन और नाश्ते के बारे में जानकारी प्राप्त की। इस बातचीत से मुझे पुराने समय के खान-पान, परिवार और जीवनशैली के बारे में बहुत कुछ सीखने को मिला।

'टैपिओका बिरयानी'

मेरी दादी ने बताया कि लगभग 30-35 साल पहले लोगों का भोजन पूरी तरह घर और खेतों पर आधारित होता था। उस समय बाजार का खाना बहुत कम खाया जाता था। हमारे परिवार के पास खेती थी, इसलिए अधिकतर सब्जियाँ, नारियल, मसाले और अन्य खाद्य सामग्री अपने खेतों से ही मिल जाती थीं। उस समय गाँवों में बहुत कम दुकानें होती थीं। केवल एक या दो छोटी दुकानें ही आसपास दिखाई देती थीं। लोगों का जीवन सरल और प्राकृतिक था। दादी बताती हैं कि उस समय केरल में नाश्ते में उबला हुआ टैपिओका (कप्पा) और मिर्च की चटनी बहुत प्रसिद्ध था। इसके अलावा स्टीम किया हुआ कटहल, अप्पम, डोसा, इडली, पुटु और उपमा भी नियमित रूप से बनाए जाते थे। रविवार के दिन खास तौर पर 'टैपिओका बिरयानी' बनाई जाती थी, जिसे पूरा परिवार मिलकर खाता था। हमारा परिवार ईसाई है, इसलिए शनिवार और रविवार को मछली, बीफ और पोर्क जैसे व्यंजन भी बनाए जाते थे। परिवार के सभी सदस्य एक साथ बैठकर भोजन

करते थे, जिससे परिवार में प्रेम और एकता बनी रहती थी।

मेरी दादी ने यह भी बताया कि उस समय खाने-पीने की चीजें बहुत सस्ती थीं। चावल, मांस और अन्य खाद्य सामग्री कम कीमत में मिल जाती थीं। उन्होंने कहा कि उस समय 2 रुपये में 20 सार्डिन मछलियाँ मिल जाती थीं। आज के समय में यह सुनना बहुत आश्चर्यजनक लगता है। उस समय लोग होटल या रेस्टोरेंट बहुत कम जाते थे। ज्यादातर खाना घर में ही बनाया जाता था और घर का भोजन ही सबसे अच्छा माना जाता था। आज के समय में लोगों की जीवनशैली बहुत बदल चुकी है। अब फास्ट फूड और बाहर के खाने का उपयोग बढ़ गया है। लोगों के पास समय कम है, इसलिए जल्दी बनने वाले भोजन को अधिक पसंद किया जाता है। फिर भी मेरी दादी आज भी पारंपरिक भोजन को अधिक महत्व देती हैं। उनका मानना है कि घर का बना भोजन स्वास्थ्य के लिए सबसे अच्छा होता है।

मेरी दादी ने मुझे कई पारंपरिक व्यंजन बनाना भी सिखाया है। उन्होंने मुझे फिश करी, स्टीम्ड टैपिओका, डोसा, उपमा और पुट्टु बनाना सिखाया। उनके साथ रसोई में समय बिताकर मुझे केवल खाना बनाना ही नहीं, बल्कि हमारी संस्कृति और पारिवारिक परंपराओं के बारे में भी सीखने को मिला।

फिश करी बनाने की विधि : सबसे पहले मछली को अच्छी तरह साफ किया जाता है। फिर उसमें हल्दी और नमक लगाया जाता है। इसके बाद नारियल तेल में प्याज, करी पत्ता, अदरक और मसाले भूनते हैं। फिर उसमें इमली का पानी डालकर मछली पकाई जाती है। यह करी चावल के साथ बहुत स्वादिष्ट लगती है।

रागी पुट्टु बनाने की विधि : रागी के आटे में थोड़ा पानी और नमक मिलाया जाता है। फिर उसमें नारियल की परत डाली जाती है। इसके बाद उसे पुट्टु मेकर में भरकर भाप में पकाया जाता है। इसे केले और चीनी के साथ खाया जाता है। दादी कहती हैं कि रागी शरीर को ताकत देती है और लंबे समय तक भूख नहीं लगने देती। मेरी दादी ने मुझे केवल खाना बनाना ही नहीं सिखाया, बल्कि रसोई से जुड़ी कई अच्छी आदतें और पारंपरिक तरीके भी सिखाए हैं। उन्होंने मुझे सिखाया कि खाना हमेशा साफ-सफाई और प्यार से बनाना चाहिए।

रागी पुट्टु

- एम.ए., निर्मला कॉलेज, केरल

केरल में सर्दी का खाना

अभिनंदा सजीव

केरल में सर्दियों के समय घरों में कुछ खास पारंपरिक भोजन बनाए जाते हैं। ये खाने की चीजें शरीर को गर्म रखने, ताकत देने और स्वास्थ्य अच्छा बनाए रखने में मदद करती हैं। गाँवों और पुराने केरल घरों में आज भी लोग मौसम के अनुसार भोजन करना पसंद करते हैं। सर्दियों में ऐसे कई व्यंजन मिलते हैं जो गर्मियों में कम खाए जाते हैं। उनमें से पाँच प्रमुख खाने की चीजों के बारे में जानकारी नीचे दी गई है।

1. **कंजी और पयर (Kanji & amp (Payar) :** कंजी केरल का बहुत प्रसिद्ध पारंपरिक भोजन है। यह चावल को ज्यादा पानी में पकाकर बनाया जाता है। इसके साथ पयर यानी हरी मूंग या चना परोसा जाता है। सर्दियों की सुबह और रात में लोग इसे खाना पसंद करते हैं क्योंकि यह हल्का होने के साथ शरीर को गर्माहट देता है। कभी-कभी इसके साथ अचार, पापड़ और नारियल की चटनी भी खाई जाती है। यह भोजन पाचन के लिए भी अच्छा माना जाता है।

2. **पुझुक्कु (Puzhukku) :** पुझुक्कु केरल का पारंपरिक और पौष्टिक भोजन है। इसे कच्चा केला, चेम्बु, मरचेनी या अन्य जड़ वाली सब्जियों को उबालकर बनाया जाता है। बाद में इसमें नारियल, हल्दी और मसाले मिलाए जाते हैं। सर्दियों में यह भोजन शरीर को ऊर्जा देता है और लंबे समय तक पेट भरा रखता है। गाँवों में लोग इसे सुबह या शाम के खाने में खाते हैं। यह स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक माना जाता है।

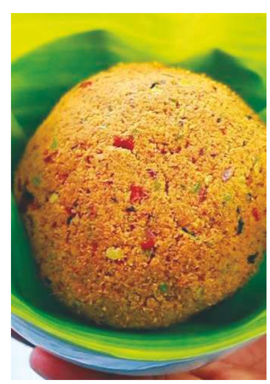

3. **कचिल पुझुंगियथु चमन्ती के साथ :** कचिल एक प्रकार की जड़ वाली सब्ज़ी है जो सर्दियों में अधिक मिलती है। इसे उबालकर 'पुझुंगियथु' बनाया जाता है और नारियल की चमन्ती (चटनी) के साथ खाया जाता है। यह भोजन स्वादिष्ट होने के साथ शरीर को ताकत देता है। पुराने समय में किसान खेतों में काम करने से पहले

इसे खाते थे क्योंकि इससे लंबे समय तक ऊर्जा मिलती थी। सर्दियों में यह केरल के घरों में बहुत लोकप्रिय है।

4. **चुक्कु काप्पी :** चुक्कु काप्पी एक पारंपरिक केरल ड्रिंक है। इसे सूखी अदरक, काली मिर्च, तुलसी और गुड़ से बनाया जाता है। सर्दियों में लोग इसे सुबह और शाम पीते हैं। यह शरीर को गर्म रखती है और सर्दी-जुकाम से बचाने में मदद करती है। बरसात और ठंड के मौसम में यह पेय बहुत उपयोगी माना जाता है।

5. **एल्लु उंडा :** एल्लु उंडा तिल और गुड़ से बना मीठा लड्डू है। सर्दियों में इसे खास तौर पर बनाया जाता है क्योंकि तिल शरीर में गर्मी पैदा करता है। यह बच्चों और बड़ों दोनों के लिए पौष्टिक होता है। इसमें आयरन और ऊर्जा भरपूर मात्र में होती है। केरल के कई घरों में त्योहारों और ठंड के दिनों में यह जरूर बनाया जाता है।

6. **कप्पा और मीन करी** (Kappa & amp(Meen Curry) : कप्पा और मीन करी केरल का बहुत प्रसिद्ध पारंपरिक भोजन है। कप्पा यानी टैपिओका को उबालकर बनाया जाता है और इसके साथ मसालेदार मछली करी परोसी जाती है। सर्दियों और बरसात के मौसम में लोग इसे विशेष रूप से खाना पसंद करते हैं। यह भोजन शरीर को गर्माहट और भरपूर ऊर्जा देता है। मीन करी में नारियल, लाल मिर्च, इमली और कई पारंपरिक मसाले डाले जाते हैं, जिससे इसका स्वाद बहुत तीखा और स्वादिष्ट बनता है। केरल के तटीय क्षेत्रों में यह भोजन बहुत लोकप्रिय है। पहले के समय में मछुआरे और खेतों में काम करने वाले लोग ताकत के लिए इसे खाते थे। आज भी कई घरों में यह पारंपरिक भोजन परिवार के साथ मिलकर खाया जाता है।

निष्कर्ष : केरल में सर्दियों के समय मिलने वाले पारंपरिक भोजन केवल स्वादिष्ट ही नहीं, बल्कि स्वास्थ्य के लिए भी बहुत लाभदायक होते हैं। कंजी-पयर, पुझुक्कु, कचिल पुझुंगियथु, चुक्कु काप्पी, एल्लु उंडा और कप्पा-मीन करी जैसे व्यंजन शरीर को गर्म रखने और ताकत देने में मदद करते हैं। ये भोजन केरल की संस्कृति और परंपरा को भी दर्शाते हैं। आज के आधुनिक समय में भी लोग इन पारंपरिक सर्दियों के भोजन को पसंद करते हैं और अपने घरों में बनाते हैं।

- निर्मला कॉलेज, केरल

त्योहार की खास डिश

अभिजा सजीव

केरल का सबसे प्रसिद्ध और पारंपरिक त्योहारी भोजन 'ओणम सद्या' है। यह भोजन केरल के प्रमुख त्योहार 'ओणम' के अवसर पर बनाया और परोसा जाता है। ओणम फसल कटाई का त्योहार है, जिसे लोग बहुत खुशी, उत्साह और श्रद्धा के साथ मनाते हैं। यह त्योहार केवल धार्मिक या सांस्कृतिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक एकता का भी प्रतीक माना जाता है।

ओणम के दिन केरल के घरों में विशेष तैयारियाँ की जाती हैं। घरों को फूलों की रंगोली 'पुक्कलम' से सजाया जाता है। लोग नए कपड़े पहनते हैं और परिवार तथा मित्रों के साथ मिलकर इस दिन को खास बनाते हैं। इस पूरे उत्सव का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा होता है 'ओणम सद्या'।

ओणम सद्या एक पारंपरिक शाकाहारी भोजन है, जिसे केले के पत्ते पर परोसा जाता है। यह परंपरा बहुत पुरानी है और इसे केरल की सांस्कृतिक पहचान माना जाता है। केले के पत्ते पर भोजन परोसना न केवल परंपरा है, बल्कि यह स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए भी लाभदायक माना जाता है।

एक पूर्ण ओणम सद्या में कई प्रकार के व्यंजन शामिल होते हैं। इसमें मुख्य रूप से उबला हुआ चावल होता है, जिसे विभिन्न प्रकार की करी और साइड डिश के साथ खाया जाता है। प्रमुख व्यंजनों में सांभर, अवियल, थोरन, ओलन, कालन, पचड़ी और एरिसेरी शामिल होते हैं। इसके साथ अचार, पापड़म और अन्य छोटे व्यंजन भी परोसे जाते हैं। हर व्यंजन का अपना अलग स्वाद और महत्व होता है।

भोजन के अंत में मीठे के रूप में 'पायसम' परोसा जाता है, जो इस पूरे भोजन का सबसे प्रिय हिस्सा माना जाता है। पायसम दूध, गुड़, चावल या सेवई से बनाया जाता है और इसका स्वाद बहुत ही स्वादिष्ट होता है। कहा जाता है कि ओणम सद्या बिना पायसम के अधूरा माना जाता है।

ओणम सद्या केवल एक भोजन नहीं है, बल्कि यह केरल की संस्कृति, परंपरा और जीवनशैली का प्रतीक है। इस भोजन की खास बात यह है कि इसमें सभी लोग एक साथ बैठकर भोजन करते हैं, चाहे उनका सामाजिक या आर्थिक स्तर कुछ भी हो। यह समानता और भाईचारे का संदेश देता है।

इसके अलावा, ओणम सद्या लोगों को एक साथ जोड़ने का काम करता है। परिवार, पड़ोसी और समाज के लोग मिलकर इसे तैयार करते हैं और आनंद लेते हैं। यह परंपरा लोगों के बीच प्रेम, सहयोग और एकता को मजबूत करती है।

आज के समय में भी ओणम सद्या की परंपरा उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी पहले थी। चाहे लोग कहीं भी रहें, ओणम के समय वे अपने घर लौटकर इस विशेष भोजन का आनंद लेते हैं। इस प्रकार, ओणम सद्या केवल एक त्योहारी भोजन नहीं बल्कि केरल की आत्मा और पहचान है।

- निर्मला कॉलेज, केरल

मेरी रसोई, मेरी विरासत : ईराट्टुपेट्टा की थाली में चावल का सफ़र

फातिमा इरशाद

प्रस्तावना : मेरे घर ईराट्टुपेट्टा में चावल सिर्फ एक अनाज नहीं है, बल्कि हमारी सुबह की शुरुआत से लेकर रात के खाने तक की धड़कन है। हमारी ज़मीन कोट्टायम के पास के खेतों से जुड़ी है, इसलिए चावल हमारी संस्कृति का हिस्सा है। जब मैंने अपनी माँ और नानी से पूछा कि हमारे घर में चावल कितनी तरह से बनता है, तो उन्होंने मुस्कुराते हुए रसोई के कई दिलचस्प राज खोले।

घर में चावल के विविध रूप : मेरी माँ ने बताया कि हमारे यहाँ रोज़ के खाने में साधारण सफेद चावल नहीं, बल्कि उबला हुआ लाल चावल (Kuthari Choru) बनता है। यह सेहत के लिए बहुत अच्छा माना जाता है। लेकिन इसके अलावा, चावल को पीसकर जो चीजें बनती हैं, उनके बिना हमारा गुजारा नहीं :

1. **अप्पम (Appam) :** चावल के आटे और नारियल के दूध को खमीर (ferment) उठाकर बनाया जाने वाला नाश्ता।

2. **पुट्टु (Puttu) :** चावल के आटे और कद्दूकस किए हुए नारियल को भाप में पकाकर बनाया जाने वाला बेलनाकार व्यंजन।

3. **पथरी (Pathiri) :** ईराट्टुपेट्टा के मुस्लिम परिवारों में चावल के आटे की बहुत पतली और मुलायम रोटी बनती है, जिसे 'पथरी' कहते हैं। माँ इसे बीफ या चिकन करी के साथ बनाती हैं।

त्यौहार और खास मौके : जब मैंने नानी से पूछा कि त्यौहारों पर क्या खास बनता है, तो उन्होंने पायसम (Payasam) का नाम लिया।

ओणम और उत्सव : इन मौकों पर अडा प्रधमन (Ada Pradhaman) बनता है, जिसमें चावल की सूखी पट्टियों (Ada) को गुड़ और नारियल के दूध में पकाया जाता है।

पारिवारिक उत्सव/ईद : ईराट्टुपेट्टा में जब कोई खास मेहमान आता है या शादी-ब्याह का मौका होता है, तो नेचोरु (Neychoru-घी वाले चावल) या पारंपरिक मलाबार/कोट्टायम स्टाइल बीफ बिरयानी बनती है, जिसमें छोटे दाने वाले खैमा चावल (Jeerakasala rice) का इस्तेमाल होता है। इसकी खुशबू पूरे घर में महक जाती है।

निष्कर्ष : नानी कहती हैं कि पहले के समय में जब फसल कटती थी, तो चावल को घर के बड़े बर्तनों (Pathayams) में जमा किया जाता था। आज भले ही हम पैकेट का चावल लाते हैं, लेकिन उसे बनाने का तरीका और उसका स्वाद आज भी हमारी पुरानी पीढ़ी की याद दिलाता है।

स्थान : ईराट्टुपेट्टा, कोट्टायम (केरल)

सोर्स : माँ और नानी से बातचीत

मेरी रसोई, मेरी विरासत

प्रिया

1.1 **मेरी दादी का नाश्ता :** आज से लगभग 30-35 वर्ष पहले नाश्ते में क्या बनता था, इस विषय पर दादी और ताई जी ने कुछ जानकारी हमारे साथ साझा की। उन्होंने बताया कि - वे जौ और कोदरे के भतूरू बनाते थे, जिसके साथ फाफरे या लिंगड़ की सब्ज़ी बनाई जाती थी। उस समय आज की तरह अलग-अलग भोजन तीनों समय नहीं बनता था। कई बार दो-दो दिनों तक यही भोजन सुबह-शाम खाया जाता था। खेतों में जो फसल उगाई जाती थी, उसी से घर का गुज़ारा चलता था। कई बार कोदरा मिलाने के लिए भी नहीं होता था, तब केवल जौ की ही रोटियाँ बनाई जाती थीं।

कोल्थ की सेपा : कोल्थ एक प्रकार की दाल होती है। इससे बनाई जाने वाली सेपा, सिड्डू की तरह होती थी, जिसे रोटी या चावल के साथ खाया जाता था। इन विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों को खाकर भी उस समय लोग निरोग और तंदुरुस्त रहते थे। दादी जी ने बताया कि उस समय गैस्टिक (Gastic) जैसी बीमारी का नामोनिशान भी नहीं था।

सरेरा : (घरासन नामक बीमारी ठीक होती है) **:** दादी जी के अनुसार, घरासन बुखार जैसी एक बीमारी होती थी, जो पहले अधिकतर नवजात बच्चों को होती थी। कई बार बड़े लोगों को भी यह बीमारी हो जाती थी। माना जाता था कि सरेरा (फलाहार) खाने से यह ठीक हो जाती थी।

रेसिपी : सरेरा बनाने की विधि : सरेरा बनाने के लिए सबसे पहले सफेद सरेरा को तवे पर एक कटोरी डालकर धीमी आँच में भूनना है। इसके बाद स्वादानुसार गुड़ या चीनी मिलानी है। जब सरेरा मक्की के दानों जैसा दिखाई देने लगे, तब उसे तवे से उतार लेना है। इसके बाद इसे दूध में मिलाकर खाया जाता है। यह फलाहार जैसा होता है।

अचार की रेसिपी (अचार का डिब्बा/घर)

लिंगड़ का अचार : हमारे यहाँ लगभग सभी प्रकार की सब्ज़ियों का अचार डाला जाता है, जिनमें गोभी, मटर, आलू, लिंगड़ तथा करसे के फूल आदि शामिल हैं। सभी के बनाने का तरीका लगभग मिलता-जुलता होता है। यहाँ लिंगड़ का अचार बनाने की विधि दी जा रही है-

सबसे पहले लिंगड़ को अच्छी तरह साफ करके छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लें। इसके बाद उसे थोड़ी देर पानी में उबालकर अलग बर्तन में रख लें, ताकि उसका अतिरिक्त पानी निकल जाए। ध्यान रखें कि लिंगड़ अधिक न पके। फिर लिंगड़ को लगभग 12 घंटे धूप में सुखा लें। इसके बाद तेल को कड़ाही में तब तक उबालें, जब तक उसका कच्चापन समाप्त न हो जाए। अब लिंगड़ को एक खुले बर्तन में डालकर उसमें स्वादानुसार नमक, मिर्च, मेथी, जीरा, अजवाइन और राई पाउडर मिलाएँ।

अंत में इस मिश्रण को किसी डिब्बे या घड़े में भर दें और उबाले गए तेल को हल्का ठंडा करके उसमें डाल दें। ढक्कन बंद कर दें। 2-3 दिन बाद अचार खाने के लिए तैयार हो जाता है।

बीए द्वितीय वर्ष,
राजकीय महाविद्यालय, पनारसा,

मेरी रसोई, मेरी विरासत

उर्मिला कुमारी

मेरी नानी ने मुझे बताया कि उनके टाइम में सुबह के नाश्ते में हल्का खाना खाया जाता था, जैसे की मक्खी, गेहूं और बाजरे की रोटी में गुड़ डालकर मीठी रोटी जिसे हम अपनी बोली में रोट कहते हैं, और गेहूं से बना हुआ दलिया जिसे हम अपनी बोली में फिभड़ा कहते हैं उनका मानना था कि यह सब चीज खाने से दिनभर उनको भूख नहीं आती थी और यह सुबह के लिए हल्का भोजन होता था। अब हमारे गांव में सुबह के नाश्ते में क्या बनता है। आज के समय में मैं देख रही हूं कि सुबह के नाश्ते में पहले की अपेक्षा बहुत बदलाव आ गया है, आजकल गांव और शहरों में सुबह के नाश्ते में अनेक प्रकार के पराठे और बाजार से खरीद के लाया हुआ गेहूं का आटा उसकी रोटियां और खरीद के लाए हुए चावल बनते हैं। आजकल गांव में एक भी ऐसा आदमी नहीं है, जिसने की अपने खेत में गेहूं, जौ और धान उगाया हो। आजकल सुबह के नाश्ते में दाल चावल रोटी सब्जी परांठे ब्रेड बटर आदि जैसी चीज बनाई जाती है। मेरी नानी द्वारा बताई गई पहले के नाश्ते की दो रेसिपी। 1. दलिया (फिभडा) सबसे पहले गेहूं को मोटा दरदरा पीसकर उसको अच्छे से धो ले, फिर उसको धीमी आंचमें उबालने के लिए छोड़ दे और साथ में ही उसमें दलिए की मात्रा देखते हुए चीनी डाल दे।जब वह अच्छी तरह से उबल जाएगा तो उसमें दूध मिला दे, और उसको अच्छी तरह से पकने दे। इस दलिया को दो प्रकार से बनाया जाता है। एक मीठा दलिया और नमकीन दलिया। और सारी विधि इसी प्रकार है, लेकिन चीनी की जगह–जगह नमक डाल दे इस प्रकार से सुबह हल्का नाश्ता बनाया जाता था। 2. मीठी रोटी सबसे पहले गेहूं, बाजरा और मक्खी के आटे को अच्छी तरह से छान के गूंथ लेंगे। और छोटे–छोटे हिस्सों में बांट लेंगे फिर उनको थोड़ा सा फैला के उसके अंदर गुड़िया चीनी डालेंगे और अच्छी तरह से धीमी आंच में पका लेंगे, यह रेसिपी आज भी हम अपने घरों में बनाते हैं या रोटी खाने में बहुत ही स्वादिष्ट होती है। 2. चावल हमारी थाली में। घर में कितनी तरह से चावल बनते हैं। मीठे चावल, खिचड़ी या अन्य। हमारे गांव में चावल तीन प्रकार से बनाए जाते हैं। गुड वाले चावल, चीनी और दूध वाले चावल और खिचड़ी। किस त्यौहार पर कौन से चावल बनाए जाते हैं? हमारे गांव में अनेक प्रकार के त्योहार मनाए जाते हैं, जिसमें की हर एक त्यौहार में अलग–अलग पकवान बनाए जाते हैं। अनेक प्रकार के चावल भी किसी खास त्यौहारों में बनाए जाते हैं। गुड़ वाले चावल दैली (छोटी दिवाली) नामक त्यौहार पर बनाए जाते हैं बुजुर्गों द्वारा कहा गया है कि इसका बनाने का खास मकसद है जिसमें गांव के बुजुर्ग कहते हैं कि जो घर के मरे हुए लोग होते हैं उनके लिए यह चावल रात के समय में जागणी (शोली) के प्रकाश में यह चावल बाहर रख दिए जाते हैं और कहते हैं की रात को मरे हुए लोग आते है और वह इन चावलों को खाते हैं। खिचड़ी दाल और चावल को इकट्ठा बनाकर एक स्वादिष्ट भोजन बनता है जिसको हम खिचड़ी कहते हैं इसको हम माघ कई महीने में मनाए जाने वाले नए साल (माघ

साजा) के अवसर पर बनाते हैं जिनको की घी के साथ परोसा जाता है। यह पहाड़ी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण त्यौहार होता है जो कि पूरे हिमाचल में अनेक प्रकार से मनाया जाता है। Heading 3. अचार का डिब्बा घर में कौन–कौन से अचार बनते हैं। 1.लिंगड़ 2. आम 3. गलगल 4. कराल्ले 5. आमला 6. आडू अचार बनने का सीजन दिसंबर (जनवरी गलगल फरवरी) मार्च आम अप्रैल कराले मई लिंगड़ जून–जुलाई आडू सितंबर–नवंबर आमला तीन अचारों की रेसिपी 1. लिंगड़ सबसे पहले इसे साफ करके अच्छे से छांट ले और टुकड़ों में काट ले फिर किसी बर्तन में इसे उबालने के लिए रख दे इसे धीमी आंच में हल्का पकाना है पूरा नहीं पकाना है। इसके बाद इसको सुखाकर इसमें जीरा, मेथी, अजवाइन, गरम मसाला, कलौंजी, हींग, करी पत्ता अन्य मसाले डालकर मिला ले। इसे कांच के बर्तन में उसकी ढक्कन अच्छे से कसकर बंद कर ले और 10–15 दिन तक रख ले। 10–15 दिनों में या खाने के लिए तैयार हो जाएगा। 2. कराले (पेड़ की कलियां) यहां पहाड़ों में पाए जाने वाले एक पेड़ का नाम है, जिसमें की फूलों की कलियों से यह आचार बनाया जाता है यह खाने में बहुत ही स्वादिष्ट होता है। सबसे पहले पेड़ों से यह कलियां निकली जाती है और साफ करके इसको हल्का सा पकाना है इसको धीमी आंच में पकाकर इसे पानी अलग करके इसको सुखा देना है फिर सरसों के तेल के साथ इसमें कुछ मसाले जैसे जीरा, अजवाइन, मेथी, धनिया, गरम मसाला आदि मिलाकर इसको अच्छे से एयर टाइट डब्बे में बंद करके रख देना है। तीन–चार दिनों में यह खाने के लिए तैयार हो जाएगा। 3. गलगल एक खट्टा पदार्थ है। जो की ठंडी जगह में पाया जाता है सबसे पहले इसको पेड़ों से निकाल कर अच्छे से धोकर छोटे–छोटे टुकड़ों में काटा जाता है और इसमें कुछ मसाले मिला दिए जाते हैं जैसे जीरा, धनिया, मेथी,अजवाइन, गरम मसाला, हींग, कड़ी पत्ता इन सब चीजों को सरसों के तेल में मिलाकर अच्छे से रख देना है। और एयर टाइट डब्बे में बंद करके रख देना है यहां 12 महीने खाया जा सकता है। सावधानियां अचार बनाते समय हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आचार को हम एयर टाइट डब्बे में अच्छे से कसकर रख ले अगर इसमें हल्की सी हवा भी चली जाए तो यह खराब हो सकता है और इसके ऊपर सफेद परत जम जाती है इसलिए इसको अच्छे से एयर टाइट डब्बे में रख देना है ताकि लंबे समय तक इसका सेवन कर सके। **4. सर्दी का खाना सर्दियों में क्या बनता था, जो कि गर्मियों में नहीं बनता।** हमारे पहाड़ी इलाकों में बहुत सर्दी होती है इसलिए अपना शरीर गर्म रखने के लिए पहाड़ी इलाकों में कुछ अलग–अलग पकवानों को बनाया जाता है हमारे यहां ज्यादातर सर्दियों में लाफी (बाड़ी), चीलडे, गेहूं का हलवा, मक्की के सिडु, मक्की की रोटी, बाजरे की रोटी और गाजर का हलवा आदि पकवान बनाए जाते हैं । लाफी (बाड़ी) सबसे पहले एक बर्तन में पानी डालकर उसको उबाला जाता है। जब पानी अच्छे से ऊपर जाए तो उसमें स्वाद अनुसार नमक और घी मिला दिया जाता है फिर नमक घूलने के बाद इसमें धीरे–धीरे आटा मिलाया जाता है और कड़छी की मदद से लगातार घुमाया जाता है, हमें इसे लगातार घूमाना पड़ता है ताकि मिश्रण नीचे बर्तन में फंसकर जल ना जाए। पकने के बाद इसे घी के साथ खाया जाता है। यह सर्दियों के लिए पौष्टिक आहार माना जाता है। चीलडे गेहूं के आटे को पानी के साथ मिलाकर पतला सा घोल तैयार किया जाता है स्कूल को तवे के ऊपर फैला दिया जाता है और रोटी के आकार का बना दिया जाता है इसे धीमी आंच में थोड़ा कच्चा रखना होता है, इसे पूरी तरह नहीं पकाते और यह तैयार होकर घी के साथ खाया जाता है हमारे यहां इसे ज्यादातर गर्भवती महिलाओं और छोटे बच्चों को जन्म दी हुई जो महिला होती है उसे बनाकर खिलाया जाता है। मक्की की रोटी और सरसों का साग यह सर्दियों में पौष्टिक आहार माना जाता है यह शरीर को स्वस्थ और मजबूत बनाता है। गाजर का हलवा गाजर का हलवा सर्दियों में बहुत ही पौष्टिक आहार माना जाता है। यह शरीर में संतुलन

बनाए रखता है। मेरा अनुभव यह है कि सर्दी केवल ऋतु ही नहीं बदलती, बल्कि हमारे पहाड़ी संस्कृति के पकवान भी बदलती है। सर्दियों में बनने वाले पकवान हमारी ऐतिहासिक परंपराओं को आगे बढ़ाते हैं। सर्दियों का खाना केवल स्वाद ही नहीं बदलता बल्कि हमें उसे मौसम के अनुसार डालने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 5. त्यौहारों की खास डिश। पहाड़ी संस्कृति में विभिन्न प्रकार के त्यौहार मनाए जाते हैं और विभिन्न त्योहारों में अनेक प्रकार के व्यंजन बनाए जाते हैं त्यौहारों में बनाए जाने वाले खास व्यंजनों के पीछे कुछ खास वजह होती है। विभिन्न प्रकार के त्योहारों में बनाए जाने वाले विभिन्न व्यंजन। 1. दीवाली के त्यौहार में हमारे गांव में सारे पकवान घी से बनाए जाते हैं। दीवाली के अवसर पर गुड और घी से बने हुए मीठे चावल हमारे गांव का महत्वपूर्ण पकवान माना जाता है। 2. लोहड़ी इस दिन तिल, मूंगफली, गुड, गबरू और पुरिया बनाई जाती है और हर घरों में रात को लोहड़ी की अग्नि में मूंगफली और गुड़ डालकर जलाया जाता है। लोहड़ी के दिन हमारे गांव में खास पकवान बवरु और पुरिया होती है। इसके दूसरे दिन नव वर्ष यानी माधं साजे का आयोजन होता है, पहाड़ी संस्कृति में माश (उड़द), राजमाह आदि की खिचड़ी बनाई जाती है। इस दिन सभी अपने बुजुर्गों को जब देकर उनका आशीर्वाद लेते हैं और अखरोट का आदान–प्रदान करते हैं यह परंपरा सदियों से चली आ रही है और आज भी चली है। 3. शिवरात्रि शिवरात्रि एक ऐसा महत्वपूर्ण त्यौहार है जिसको की पहाड़ों में धूमधाम से मनाया जाता है, इस दिन पुरिया, बौड़े (माश की डली हुई दाल) और बवरु विशेष पकवान बनाए जाते हैं। इस दिन सभी घरों की दीवार में एक पेंटिंग बनाते हैं और उसके ऊपर संतरे और कुछ विशेष पेड़ों के पत्तों से एक माला उसे पेंटिंग के ऊपर चढ़ाई जाती है, जिसे हम अपनी बोली में 'सौइ' कहते हैं। मान्यता है कि इस माला को घर के लोग गले में डालकर नाचते हैं माना जाता है कि इस माला के अंदर शिवजी की शक्तियां आ जाती है और यह माला खुद ही लोगों के साथ नाचने लग जाती है। पूरी रात इसकी पहरेदारी करते हैं सुबह 4:00 बजे से पहले इसे घर से बाहर निकाला जाता है, इस घर की किसी कोने में लगाकर रखा जाता है और यह परंपरा हर साल निभाई जाती है। 4. छोटी दिवाली (दैली) हमारे गांव में एक ग्रामीण त्योहार होता है जिसको कि हम अपनी बोली में दैली कहते हैं। इस दिन सभी गांव के लोग सामने वाले गांव के साथ चीड़ के पेड़ में लगे हुए 'शैंगते' को आग में जलकर एक दूसरे के ऊपर हमला करते हैं। माना जाता है कि जिस आदमी के ऊपर शैंकते से लगती है तो उसके घर में देउली का आयोजन किया जाता है। यह त्यौहार बहुत ही मनोरंजक होता है। इस दिन सभी लोग अपने घरों में अच्छा से बने हुए मीठे चावल पकाते हैं और शोले की आग के साथ घर के बाहर रख दिया जाता है। इस दिन किसी और पकवानों का सेवन नहीं किया जाता। हर घरों में सिर्फ यह गुड़ से बने हुए मीठे चावल ही खाए जाते हैं।

थीम : 2 बोलियां और नाम

1. मेरे पांच रिष्तेदार, उनके नाम अपनी बोली में कैसे बोलते हैं। 1. दादा–दादू, 2. नाना–नानू, 3. बहन–भीण, 4. माता–आमा 5. पिता–बापू

2. अपनी बोली में 1 से 10 तक गिनती कैसे बोलते हैं। 1. एक– एक 2. दो– दूई 3. तीन– त्राए 4. चार– चार 5. पांच– पांज 6. छः– छह 7. सात– सौत 8. आठ– आठ 9. नौ– नउ 10. दस– दस

नाम : उर्मिला कुमारी, कक्षा : कला स्नातंक प्रथम वर्श मुख्य विशय : राजनीतिक विज्ञान जिनसे जानकारी पूछी है। नाम : शुक्रि देवी उम्र : 91 वर्ष पता : गांव शारटी, डाकघर : महोगी, तहसील : बालीचौकी, जिला : मंडी, हिमाचल प्रदेश–175124.

सर्दी का खाना : ठंडी हवाएँ और बर्फ की सफेद चादर के मध्य बनता हमारा भोजन

शेर सिंह

परिचय : सर्दियों का मौसम आना केवल ऋतु का परिवर्तन नहीं होता, यह परिवर्तन हमारे भोजन में भी होता है। पहाड़ों की सर्दियों की शुष्क हवाएँ षरीर पर काँटों की तरह चुभती हैं, मगर सर्दियों का भोजन उस पर मरहम जैसा काम करता है। इस मरहम को समझना उतना ही आवश्यक है,जितना गर्मी में ठंडी हवा का महत्व होता है।

पकवानों का नाम तथा उनका वर्णन :

1. छली (मक्का) की रोटी और झोल : हमारे घर में सर्दियों के मौसम में मक्का की रोटी और झोल बनाया जाता है। झोल कढ़ी जैसा होता है, मगर उसमें आलू या अन्य सब्जियाँ नहीं डाली जातीं। यह खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है और सर्दियों में शरीर को गर्माहट और संतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक माना जाता है।

2. मघोलू (भांग के बीज) की सब्जी : यह भांग के पौधों में लगे बीजों से बनाई जाती है। इसके लिए बीजों को गर्मियों में निकालकर सुखा लिया जाता है। सर्दियों में इन्हें भूनकर या तड़का लगाकर सब्जी बनाई जाती है, जो शरीर को गर्म रखने का काम करती है।

3. कुंगश (बिच्छू बूटी) की सब्जी : कुंगश सदाबहार रहती है, मगर इसका सेवन मुख्यतः सर्दी में किया जाता है, क्योंकि यह शरीर को गर्मी प्रदान करती है। इसे चिमटे की सहायता से छौड़ (छाबड़ी) में रखा जाता है और फिर साफ पानी सेदो–तीन बार धोया जाता है। उसके बाद इसे शील (बड़ा समतल पत्थर) पर बाट की सहायता से पीसा जाता है। पीसने के बाद इसे पानी के साथ तंदूर पर रखी कढ़ाई में पकाया जाता है। पकने के बाद तड़का लगाया जाता है और फिर यह खाने के लिए तैयार हो जाती है।

4. लाफी (बाड़ी) : लाफी गर्मी और सर्दी दोनों मौसमों में बनाई जाती है, मगर इसका प्रयोग अधिकतर सर्दियों में होता है। इसे बनाने के लिए पहले कढ़ाई में पानी गर्म किया जाता है। फिर स्वादानुसार नमक या चीनी डाली जाती है। इसके बाद उसमें पीठा (आटा) डाल दिया जाता है और एक डंडे की सहायता से लगातार घुमाया जाता है, जब तक आटा पूरी तरह पानी में मिल न जाए।

तैयार होने के बाद उसे कढ़ाई से निकालकर थाली में रखा जाता है और बीच में गोल स्थान बनाया जाता है, जिसमें देसी घी डाला जाता है।

इसकी खासियत यह है कि यदि घर में अन्य भोजन सामग्री न हो तो इसे जल्दी और आसानी से बनाया जा सकता है।

5. छली (मक्का) का फीमडा : मक्का के दानों को पहले चक्की में पीसा जाता है। उसके बाद उसे इकट्ठा करके बड़ी कढ़ाई में तड़का लगाया जाता है। फिर उसमें मक्का का आटा डाला जाता है और बाद में पानी या छाई (लस्सी) मिलाई जाती है। लस्सी से बना फीमडा अधिक स्वादिष्ट माना जाता है।

6. सरसों का साग : सरसों का साग सर्दियों में अधिक देखने को मिलता है। यह कई स्थानों पर अपने आप उग जाता है। इसे हाथों से तोड़कर लाया जाता है, है फिर धोकर पकाया जाता है और तड़का लगाया जाता है। इसमें मक्का का आटा और चावल भी डाले जाते हैं, जिसके कारण इसे सरसों का फीमडा भी कहा जाता है। इसे मक्का की रोटी के साथ या अकेले भी खाया जाता है।

परिवार की राय : मुझे यह जानकारी मेरे दादा–दादी दोनों ने मिलकर दी है। उनकी राय है कि सर्दियों का खाना शरीर का संतुलन बनाए रखता है और शरीर को गर्म रखने में सहायता करता है।

पहले और अब का अंतर : पहले इन चीजों का प्रयोग भोजन में अधिक होता था, जबकि अब इनका उपयोग धीरे–धीरे कम होता जा रहा है। यदि मैं अपनी बात करूँ, तो मुझे लाफी और सरसों का साग बिल्कुल पसंद नहीं है। बाकी अधिकांश पकवान मैंने खाए हैं, मगर भंग के बीजों की सब्जी मैंने बनते हुए नहीं देखी। मैंने उसे केवल एक बार भूनकर खाया है। धीरे–धीरे शायद हम इन पारंपरिक व्यंजनों को भूलते जा रहे हैं, इसलिए इनका लेखांकन और संरक्षण आवश्यक हो जाता है।

मेरा अनुभव : सर्दियों का खाना केवल स्वाद ही नहीं, बल्कि अपनापन भी देता है। खासकर मुझे मक्की की रोटी और झोल बहुत पसंद हैं। इन व्यंजनों में मुझे पहाड़ों की सादगी और हमारी परंपरा की झलक दिखाई देती है।

निष्कर्ष : सर्दियों का खाना केवल भूख मिटाने का साधन नहीं होता, बल्कि यह हमारे शरीर को उस मौसम के अनुसार ढालने का एक महत्वपूर्ण माध्यम भी है। इसलिए इसका महत्व हमारे जीवन में और अधिक बढ़ जाता है।

स्रोत व्यक्ति : मेरे दादा जी और दादी जी

स्रोत–1

नाम : श्री लाल दास

उम्र : 58 वर्ष

पता : ग्राम जलुईंड, कलवाटा (बालीचौकी), जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश।

स्रोत – 2

नाम : श्रीमती बंतु देवी

उम्र : 57 वर्ष

पता : ग्राम जलुईंड, कलवाटा (बालीचौकी), जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश (175106)

दिनांक : 24 मई 2026.

– कला स्नातक, प्रथम वर्ष,
राजकीय महाविद्यालय पनारसा

यात्रा

हिमाचल से केरल तक

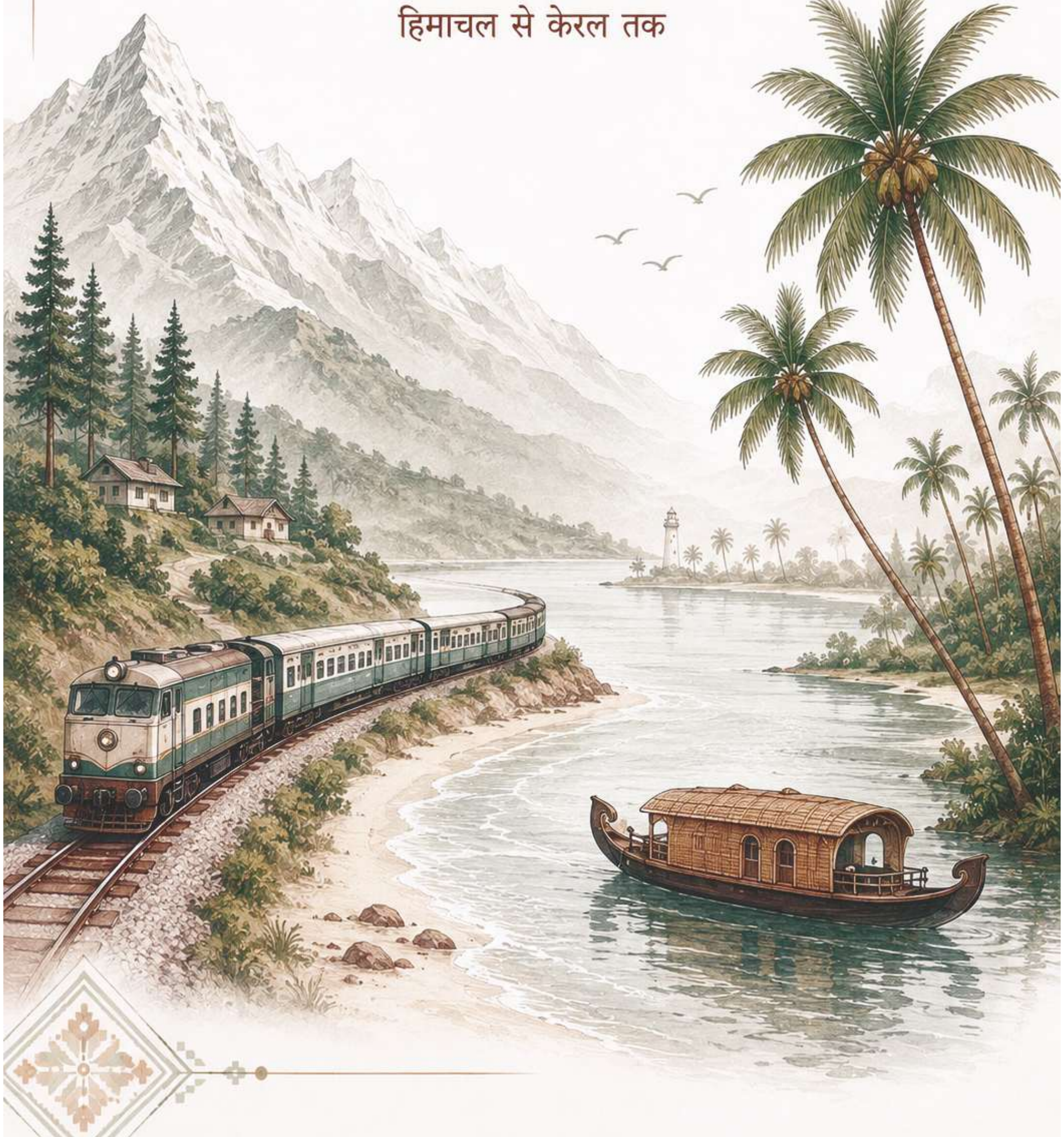

हिमाचल से केरल : एक यात्रा सिर्फ दूरी की नहीं, दिलों की

रवि शर्मा

कुछ यात्राएँ सिर्फ एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने का माध्यम नहीं होतीं। वे भीतर चलती हैं। मन में, स्मृतियों में, रिश्तों में, और उन लोगों की मुस्कानों में जो रास्ते में मिलते हैं। यह यात्रा भी ऐसी ही थी...एक यात्रा संस्कृति की, एक यात्रा आपसी प्रेम और भाईचारे की, एक यात्रा परिचय की, एक यात्रा भारत को भीतर से महसूस करने की। यह यात्रा थी हिमाचल से केरल की। और आज भी, जब उस यात्रा को याद करता हूँ, तो लगता है जैसे वह सफर अब भी चल रहा है। जैसे ट्रेन की खिड़की से पीछे छूटते दृश्य अब भी आँखों में तैर रहे हों। जैसे अलुवा स्टेशन की नमी अब भी हथेलियों में महसूस होती हो। जैसे समुद्र की पहली लहर अब भी पैरों को छू रही हो।

तैयारी : एक यात्रा जो महीनों पहले शुरू हो चुकी थी। उन्नीस तारीख से बहुत पहले यह यात्रा शुरू हो चुकी थी। असल में, जिस दिन पहली बार कॉलेज में यह चर्चा हुई थी कि हिमाचल से केरल तक एक सांस्कृतिक आदान–प्रदान कार्यक्रम होने वाला है, उसी दिन यह यात्रा हमारे भीतर जन्म ले चुकी थी। राजकीय महाविद्यालय पनारसा, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश के गलियारों में तब से ही एक अलग उत्साह था।

कौन जाएगा?

कैसे जाएंगे?

क्या पहनेंगे?

कौन–सी प्रस्तुतियाँ होंगी?

कैसे लोग होंगे वहाँ?

इन सब सवालों के बीच हम धीरे–धीरे इस यात्रा का हिस्सा बनने लगे। तीन महीनों तक तैयारियाँ चलती रहीं। किसी ने नृत्य तैयार किया, किसी ने गीत। किसी ने पारंपरिक परिधान खरीदे, किसी ने मोबाइल में मलयालम शब्द सीखने शुरू किए। हम सब अपने–अपने ढंग से केरल की ओर बढ़ रहे थे।

उन्नीस तारीख : जब सफर सच में शुरू हुआ।

उन्नीस तारीख को लगभग दोपहर बारह–एक बजे के आस–पास हम राजकीय महाविद्यालय पनारसा से दिल्ली के लिए रवाना हुए। एक ट्रैवलर में बैठे हम सबके चेहरों पर अलग–अलग भाव थे। किसी के मन में उत्साह था, किसी के भीतर हल्की–सी घबराहट। किसी को पहली बार घर से इतनी दूर जाना था। किसी ने पहली बार इतनी लंबी ट्रेन यात्रा करनी थी। लेकिन जैसे ही ट्रैवलर आगे बढ़ी, वैसे ही सारी झिझक धीरे–धीरे हँसी में बदलने लगी। अंताक्षरी शुरू हो गई। किसी ने पुराने गीत गाए, किसी ने नए। किसी ने चुटकुले सुनाए, किसी ने बस खिड़की से बाहर झाँकते हुए पहाड़ों को चुपचाप विदा कहा। रास्ते भर खाने के पैकेट खुलते रहे। हँसी के फव्वारे उड़ते रहे। और धीरे–धीरे ऐसा लगा जैसे हम किसी औपचारिक यात्रा पर नहीं, बल्कि एक परिवार की तरह कहीं जा रहे हों। मैम का सहयोग पूरे रास्ते हमारे साथ रहा। उन्होंने

हर विद्यार्थी का ध्यान रखा। और हम सबने मिलकर इस सफर को सहज बना दिया। बीस तारीख की रात लगभग डेढ़ बजे हम दिल्ली पहुँच गए।

दिल्ली स्टेशन : थकान, चिंता और उत्साह

दिल्ली स्टेशन की भीड़ अपने आप में एक अनुभव थी। इतने लोग। इतनी आवाजें। इतनी भाग–दौड़। हममें से अधिकांश पहली बार इतनी बड़ी रेलवे यात्रा करने वाले थे। इसलिए थोड़ी चिंता स्वाभाविक थी... कैसे ट्रेन ढूँढेंगे? कैसे सामान संभालेंगे? कहीं कोई पीछे न रह जाए? लेकिन उस चिंता से कहीं ज़्यादा उत्साह था। रात एक बजे से सुबह पाँच बजे तक हम सबने एक–दूसरे का सामान संभाला, एक–दूसरे को बैठाया, किसी ने चाय ली, किसी ने झपकी ली, और कोई बस प्लेटफॉर्म पर बैठकर यात्रियों को देखता रहा। वहाँ एक अलग–सी एकता थी।

जैसे हम सब एक–दूसरे की जिम्मेदारी हों।

केरला एक्सप्रेस : जहाँ से संस्कृति का आदान–प्रदान शुरू हुआ।

सुबह पाँच बजे के करीब हम "केरला एक्सप्रेस" में सवार हुए। ट्रेन नंबर 12506। गंतव्य.. अलुवा। जैसे ही ट्रेन में प्रवेश किया, देखा कि बोगी लगभग खाली थी। मन अचानक प्रसन्न हो गया। सबने अपनी–अपनी सीटें खोजीं। ग्रुप बन गए। सामान व्यवस्थित हुआ। मैम भी आकर हर विद्यार्थी को देखकर गईं कि सब ठीक से बैठ गए हैं या नहीं। और फिर शुरू हुआ असली सफर। कुछ ही देर बाद हमारे सामने बैठे एक लड़के ने मुस्कुराकर पूछा!

"यू फ्रॉम हिमाचल?"

वह था आशिल।

केरल का एक युवक, जो इस पूरी यात्रा में हमारा पहला मित्र बना। आशिल ने हमें मलयालम गाने सुनाए। कुछ शब्द सिखाए। हमने उसे हिमाचली गीत सुनाए। यहीं से हमारा सांस्कृतिक आदान–प्रदान शुरू हो चुका था। फिर यह सफर कहाँ रुकने वाला था?

ट्रेन : जहाँ पूरा भारत एक बोगी में मिल गया

ट्रेन धीरे–धीरे उत्तर भारत से दक्षिण भारत की ओर बढ़ रही थी और उसके साथ–साथ हमारे अनुभव भी विस्तृत होते जा रहे थे। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल। हर राज्य के लोग इस यात्रा का हिस्सा बनते चले गए। एक कॉलेज का समूह मिला जो मनाली घूमकर वापस केरल लौट रहा था। रिफा, आदिल, आदुल और न जाने कितने नाम हमारी स्मृतियों में जुड़ते चले गए। एक अंकल मिले जो तमिलनाडु से थे और उनकी शक्ल बिल्कुल रजनीकांत जैसी लगती थी। हमने उनसे खूब मजाक किया। उन्होंने भी हँसते हुए हमारा साथ दिया। स्टेशनों पर उतरकर जोमैटो और स्विगी से खाना लेना अपने आप में रोमांच था।

कहीं ट्रेन छूट न जाए, यह डर भी था। लेकिन हर बार कोई न कोई कहता... "भागो! ट्रेन चलने लगी!" और फिर सब हँसते हुए वापस चढ़ जाते। एक कॉर्डिनेटर की नजर से मेरे लिए यह यात्रा थोड़ी अलग थी। क्योंकि मैं विद्यार्थियों का कॉर्डिनेटर था। मुझे सबको देखना था। सबका ध्यान रखना था। और खुद को भी संभालना था। हर आधे घंटे में मैं अलग–अलग बोगियों में जाता। किसी की तबीयत पूछता। किसी को खाना देता। किसी के साथ बैठकर गप्पें मारता। कभी हिंदी गीत गूँजते, कभी मलयालम। कभी गेम्स चलते, कभी दर्शनशास्त्र की बातें। ऐसा लग रहा था जैसे ट्रेन की हर बोगी एक छोटा संसार बन गई हो।

अलुवा स्टेशन : जब पहली बार केरल ने स्वागत किया।

पूरी रात, पूरा दिन और फिर अगली रात। समय कैसे बीत गया, पता ही नहीं चला। सुबह लगभग दो बजे हम अलुवा स्टेशन पहुँचे। लेकिन उससे पहले विदाइयों का सिलसिला शुरू हो चुका था। त्रिशूर में कुछ दोस्त उतर गए। एरोड में कुछ और। जिन लोगों से हमारा परिचय केवल एक दिन पहले हुआ था, वे

इतने अपने लगने लगे थे कि उन्हें विदा करते समय मन भारी हो रहा था। और फिर हम पहुँचे अलुवा। वहाँ हमें लेने के लिए खड़ा था...रसल। निर्मला कॉलेज का पहला मित्र। उसकी मुस्कान में अपनापन था। उसने हमें बैठाया, रेस्ट रूम तक पहुँचाया, और लगातार यह सुनिश्चित करता रहा कि हम सहज महसूस करें।

कुछ देर बाद अगस्टिन सर और एबल सर भी आ गए। उन्होंने हमें हमारे ठहरने के स्थान "नेस्ट" तक पहुँचाया। उस समय केरल की हवा में एक अलग नमी थी। एक अलग सुगंध। और उस सुगंध में स्वागत का भाव था। निर्मला कॉलेज रू जहाँ भाषाएँ नहीं, भावनाएँ बोलती थीं। बाईस तारीखघ् को हम पारंपरिक दक्षिण भारतीय परिधानों में निर्मला कॉलेज पहुँचे। कॉलेज का वातावरण उत्साह से भरा हुआ था। सब हमें देख रहे थे। कई विद्यार्थी हमारे साथ तस्वीरें लेना चाहते थे।

भाषा एक चुनौती थी। उन्हें हिंदी कठिन लगती थी। हमें मलयालम। लेकिन मुस्कुराहटों की कोई भाषा नहीं होती। एक हँसी, एक इशारा, एक "हैलो", एक "वेलकम"कृ काफी था दिलों को जोड़ने के लिए। वहाँ स्वागत समारोह हुआ। परिचय सत्र हुआ। "हरकारा" ई–रिसर्च जर्नल पर चर्चा हुई। शाम को केरल के विद्यार्थियों ने सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ दीं। नृत्य, संगीत, ताल और लय.. सब कुछ इतना जीवंत था कि हम मंत्रमुग्ध होकर देखते रह गए। रात को बॉर्न फायर हुआ। उस आग के चारों ओर बैठे हुए ऐसा लगा जैसे हम अलग–अलग राज्यों से नहीं, बल्कि एक ही घर से आए हों।

सांस्कृतिक आदान–प्रदान : जब पूरा कॉलेज परिवार बन गया।

अगले दिन हमारा मुख्य सांस्कृतिक कार्यक्रम था। सुबह–सुबह हम अपनी सांस्कृतिक वेशभूषा में कॉलेज पहुँचे। पूरा कॉलेज उत्साहित था। हमारे गीत, हमारे नृत्य, हमारी बोली.. सब उनके लिए नए थे। और उनका कथकली, मोहिनीयट्टम, मलयालम संगीत... हमारे लिए एक नई दुनिया। लेकिन सबसे सुंदर बात यह थी कि हम एक–दूसरे को समझने की कोशिश कर रहे थे। भावनाओं से। ऊर्जा से। स्नेह से। यही तो भारत है।

छोटी काशी : आध्यात्मिकता का स्पर्श

उसी शाम हम एकदिर गए जिसे "छोटी काशी" कहा जाता है।कहा जाता है कि वहाँ काशी का जल प्रकट हुआ था। मंदिर की शांति, दीपों की रोशनी, और दक्षिण भारतीय स्थापत्य ने मन को भीतर तक छू लिया। वहाँ खड़े होकर ऐसा लगा कि भारत सिर्फ भौगोलिक विविधता नहीं है, वह आध्यात्मिक रूप से भी एक है।

फोर्ट कोच्ची : समुद्र से पहली मुलाकात

अगला दिन भ्रमण का था। हम सबसे पहले एक संग्रहालय गए जहाँ केरल ही नहीं, पूरे भारत का इतिहास सहेजा गया था। लेकिन उस दिन का सबसे अद्भुत अनुभव अभी बाकी था। फोर्ट कोच्ची बीच। जैसे ही हम समुद्र के किनारे पहुँचे, सब कुछ बदल गया। हममें से अधिकांश ने पहली बार समुद्र देखा था। पहली बार विशाल लहरों को। पहली बार नमकीन हवा को। पहली बार उस अनंत विस्तार को जो आँखों से कहीं आगे तक फैला हुआ था। जब समुद्र की पहली लहर पैरों से टकराई, तो ऐसा लगा जैसे प्रकृति स्वयं स्वागत कर रही हो। सबकी आँखों में चमक थी। हर चेहरा खुशी से भरा हुआ था। वहीं मेरा चश्मा भी गिर गया। और वह घटना आज भी याद करके हँसी आ जाती है।

विदाई : सबसे कठिन हिस्सा

फिर वह सुबह भी आ गई जब वापस लौटना था। बैग पैक करते समय कमरों में एक अजीब–सी चुप्पी थी। कोई खुलकर उदास नहीं था, लेकिन सबके मन भारी थे। क्योंकि कुछ ही दिनों में लोग अपने लगने लगे थे। एरनाकुलम स्टेशन तक हमें छोड़ने एबल सर, रसल, नास, सुजीता मैम और कई विद्यार्थी आए। ट्रेन में बैठते समय जब हमने हाथ हिलाकर उन्हें विदा कहा, तो लगा जैसे कोई अपना पीछे छूट रहा हो।

वापसी की यात्रा : जहाँ यादें साथ चलती रहीं

वापसी की यात्रा थोड़ी चुनौतीपूर्ण थी क्योंकि हमारी बोगियाँ अलग–अलग थीं। लेकिन फिर भी सबने एक–दूसरे का ध्यान रखा। मैं विशेष रूप से बिंदु मैम, सुहानी, विपिन और बाकी सभी साथियों का धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने पूरे सफर में बहुत समझदारी दिखाई। हर बोगी में जाकर हाल–चाल पूछना, खाना पहुँचाना, सबको संभालना। यह सब अब एक जिम्मेदारी नहीं, अपनापन लगने लगा था। वृंदावन की कुछ आंटियाँ मिलीं जो भजन गा रही थीं। उनकी मधुर आवाज पूरे डिब्बे में गूँज रही थी। एक दीदी मिलीं जो केरल से थीं लेकिन मुंबई में रहती थीं। उन्होंने हमें अच्चपम और केरल के चिप्स खिलाए। ट्रेन में हर नया व्यक्ति एक नई कहानी लेकर आता था।

घर वापसी : लेकिन यात्रा अब भी जारी है

दिल्ली पहुँचकर हमने कुछ समय शहर में बिताया और फिर बस से हिमाचल लौट आए। जब पहाड़ फिर से दिखने लगे, तो लगा जैसे घर ने बाहें खोल दी हों। लेकिन सच कहूँ तो, इस यात्रा के बाद "घर" की परिभाषा बदल गई थी। अब उसमें केरल भी शामिल था।

अलुवा भी। निर्मला कॉलेज भी। रसल, आशिल, एबल सर, सुजीदा मैम... सब उसमें शामिल थे। यह यात्रा आखिर थी क्या? क्या यह सिर्फ हिमाचल से केरल तक की यात्रा थी? नहीं। यह यात्रा थी... पूर्वाग्रहों से परिचय तक की। अनजान चेहरों से आत्मीय रिश्तों तक की। भाषाओं से भावनाओं तक की। यह यात्रा हमें सिखा गई कि भारत सिर्फ नक्शे पर बना देश नहीं है भारत उन मुस्कुराहटों में बसता है जो बिना भाषा समझे भी समझ आ जाती हैं। आज भी जब कभी मलयालम गीत सुनता हूँ, तो ट्रेन की वह बोगी याद आ जाती है जब समुद्र की तस्वीर देखता हूँ, तो फोर्ट कोच्ची की लहरें याद आ जाती हैं।जब कॉलेज के गलियारों से गुजरता हूँ, तो निर्मला कॉलेज की वह ऊर्जा याद आ जाती है। और तब लगता है... कुछ यात्राएँ समाप्त नहीं होतीं। वे हमारे भीतर हमेशा चलती रहती हैं। ठीक इस यात्रा की तरह। हिमाचल से केरल तक। दिल से दिल तक।

– राजकीय महाविद्यालय, पनारसा, ज़िला मण्डी, हि.प्र.।

JOURNEY from VILLAGE to COLLEGE

Rohani

Introduction :

The village of Mahi, located on the elevated terrain of Kulda, is characterized by its modest population of approximately 110 residents, spread over an area of around 4 km². This village is relatively secluded, offering a tranquil environment that is devoid of noise and pollution. The distance from Mahi to my college is nearly 8 kilometers. Notably, the village lacks established roads or alternative modes of transportation; thus, access to this serene locale necessitates a journey undertaken on foot.

The necessity of commuting from home to college mandates an early morning routine, allowing sufficient time to complete household responsibilities and arrive at the institution punctually. Traversing the meandering, narrow pathways of the village engenders a distinct sense of joy. The initial step upon this path elicits a profound feeling of liberation, as though all constraints have been dismantled. This newfound

freedom not only permits me to walk unimpeded but also to run, thereby facilitating the pursuit of my aspirations. It appears that I have transcended the limitations imposed by societal expectations, rendering me impervious to obstacles that might hinder my journey. This inaugural step on the path symbolizes the first rung on the ladder toward my ambitions and eventual success.

However, the daily traversal of such an extensive distance presents significant challenges. The strain on my leg muscles and the resultant fatigue are palpable, often extending beyond my feet to encompass my entire body. Despite these physical demands, a sense of excitement persists within me.

This enthusiasm is fuelled by the desire to realize my dreams and the opportunity to engage in novel experiences or acquire new knowledge. Despite the considerable distance between my residence and the college, I undertake the journey on foot each day, driven by my commitment to fulfil my domestic obligations while simultaneously pursuing my aspirations. Consequently, I have made a conscious decision to embark on this daily pilgrimage from my tranquil village, departing each morning with the conviction that success awaits me at my destination. I remind myself daily that each challenge I face will ultimately guide me toward my goals.

As I set out in the morning, the village exudes an atmosphere of tranquillity, accompanied by a refreshing breeze. The sight of the sun's golden rays breaking through the horizon inspires me as I make my way to college. Along my route, I observe villagers engaged in agricultural activities and their customary routines, who greet me each morning with warm smiles and the local phrase, "Chal Padi."

My path is adorned with fields, streams, and pine trees, each contributing to the scenic landscape. I pass by a Jio tower, whose summit I gaze upon daily, contemplating the aspiration that one day I will ascend to its peak and experience the view from such a height. This journey represents more than a mere physical excursion; it serves as an opportunity for introspection. I find myself contemplating the nature of my future and endeavouring to mentally prepare for the forthcoming challenges while reflecting on my past experiences, including cherished memories and friendships. I ponder the extent of the differences between my earlier years and my present circumstances.

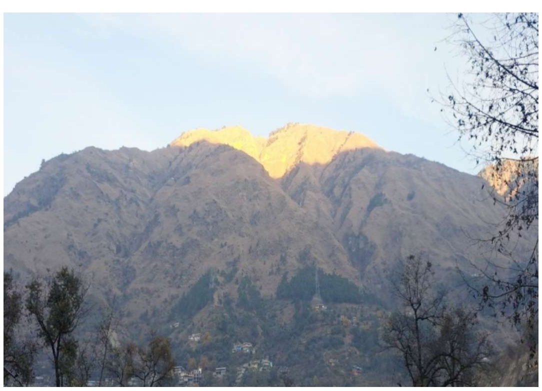

In my youth, my school attendance was primarily motivated by the desire for play and enjoyment, devoid of any concerns regarding the future or the burdens of responsibility. In contrast, my current enrolment in college is driven by a

commitment to realizing my aspirations and constructing a viable future. The locale of Panarsa, where my college is situated, markedly contrasts with my home village. While my village is characterized by tranquillity and natural beauty, featuring fields and streams, the environment shifts dramatically upon crossing the Byas River. The opposite

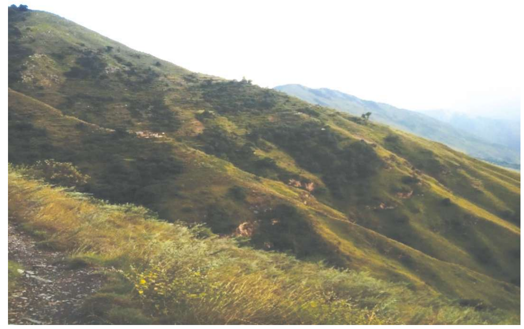

bank is bustling with numerous shops, residential areas, paved roads, and the omnipresence of vehicular noise, presenting a starkly different atmosphere. This area offers a plethora of amenities and facilities, illustrating the dichotomy between the two settings.

The structure in question comprises four to five stories. However, the amenities provided within this building do not elicit the same level of joy that I experience in my village. Upon successfully navigating various obs-tacles, I arrive at the entrance of the college. This journey culminates in a fervent anticipation as I approach the threshold of my aspirations. Reaching the college gate instills a profound sense of relief, signifying the accomplishment of a significant milestone.

On my inaugural day at the college, I was greeted by a novel environment characterized by a shift in responsibilities; previously, elders undertook various tasks, whereas now, it is the younger generation that engages in these activities, including those of a technical nature. This marked my first encounter with independent technical work. As I reflect on this experience, I recognize that what once appeared insurmountable now seems entirely feasible.

To sum up, this journey imparts enduring life lessons. It cultivates self-confidence and patience, reinforcing the notion that challenges do not render me weaker but rather fortify my resilience. These obstacles represent the initial steps toward achieving success.

BA-III Year, GC Panarsa, Distt. mandi

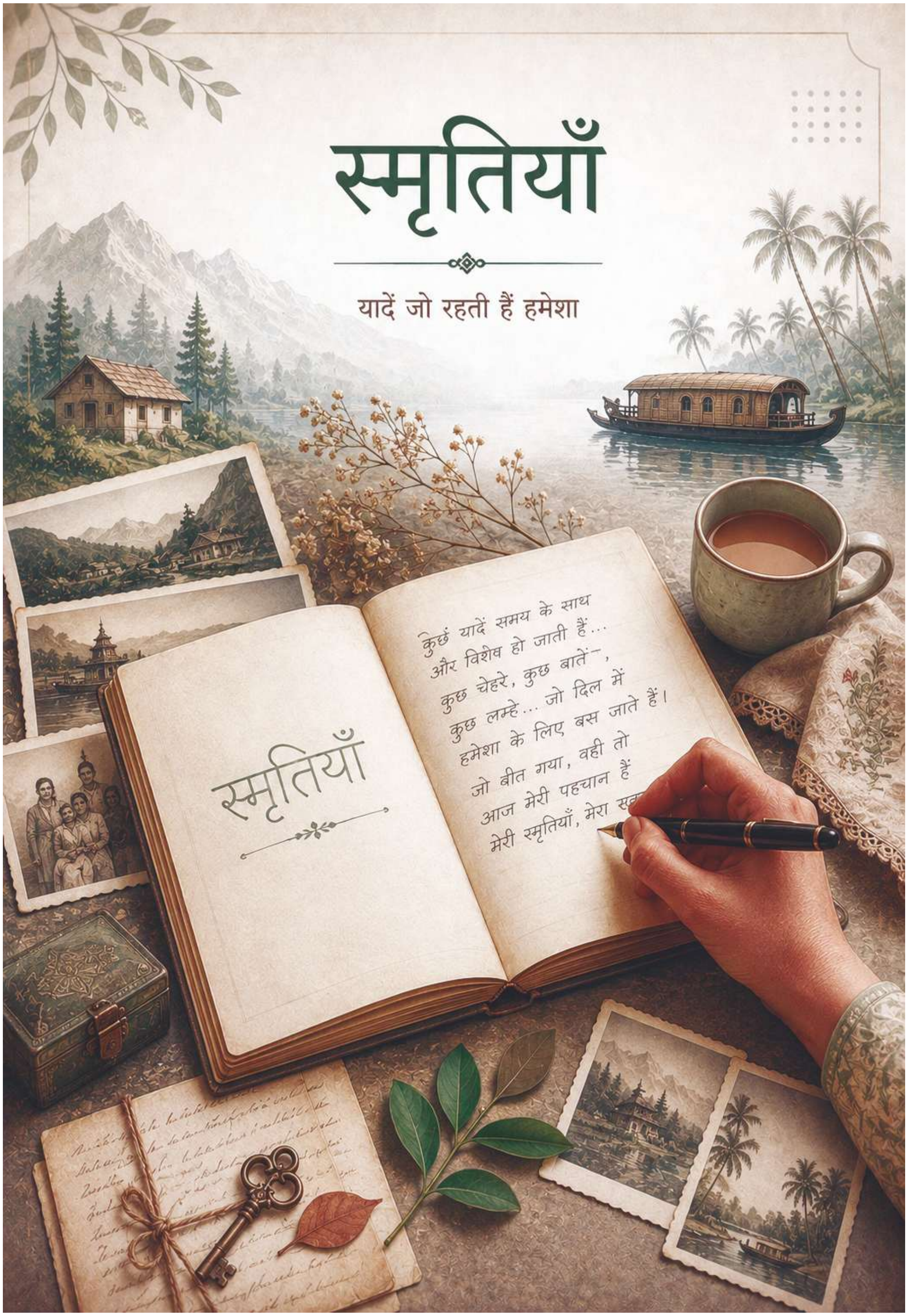
स्मृतियाँ
यादें जो रहती हैं हमेशा
स्मृतियाँ
कुछ यादें समय के साथ
और विशेष हो जाती हैं...
कुछ चेहरे, कुछ बातें,
कुछ लम्हे... जो दिल में
हमेशा के लिए बस जाते हैं।
जो बीत गया, वही तो
आज मेरी पहचान हैं
मेरी स्मृतियाँ, मेरा

यात्रा : एक अनूठा सफर

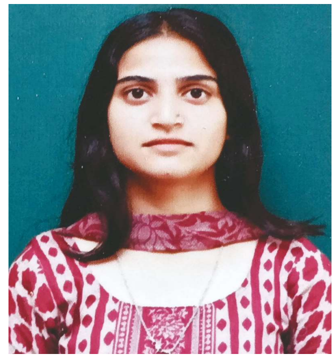

साक्षी शर्मा

जब यह सफर शुरू हुआ था, तब दिल में डर भी था... क्योंकि पहली बार हम अपने घर से इतनी दूर जा रहे थे। लेकिन खुशी भी उतनी ही थी, क्योंकि हम उन दोस्तों के साथ सफर कर रहे थे जिनके साथ हमेशा नई जगहें घूमने का सपना देखा था। पहली बार अपनी आँखों से रेलवे स्टेशन देखा। हर पल यही डर लगा रहता था कि कहीं कुछ खो न जाए या कुछ गलत न हो जाए.. लेकिन जैसे ही हम ट्रेन में बैठे, हमें अपनी ही उम्र के इतने प्यारे लोग मिले कि हमारी खुशी का ठिकाना ही नहीं रहा। उनसे दोस्ती हुई, दिल से बातें हुईं। हमने उनसे मलयालम सीखी और उन्हें अपनी भाषा सिखाई। साथ में गाने गाए, खूब हँसे, इतना सब कुछ जिया कि शब्द भी कम पड़ जाएँ। कुछ अजनबी कब इतने अपने बन गए, पता ही नहीं चला देखते ही देखते दो दिन बीत गए और हम दिल्ली से केरल पहुँच गए। फिर हम पहुँचे निर्मला महाविद्यालय, मुवाट्टुपुझा और नेस्ट निवास (NESTT Residence) में रुके। सभी दोस्तों को कमरे मिले कृ एक कमरे में तीन लोग, बिल्कुल हॉस्टल लाइफ जैसी अनुभूति। देर रात तक बातें करना, हँसना, हर पल को जीना... सब कुछ बेहद खास था।

अभिव्यक्ति : दिल के जज्बात और अनुभव

फिर महाविद्यालय गए और अपनी प्रस्तुतियाँ दीं। सब बहुत अच्छा हुआ। कल्चरल एक्सचेंज प्रोग्राम किया। वहाँ के शिक्षक सच में बहुत देखभाल करने वाले, स्नेही और दयालु थे। उन्होंने हमारा बहुत ध्यान रखा। वहाँ के विद्यार्थी भी इतने अच्छे थे कि कब उनसे लगाव हो गया, पता ही नहीं चला। मैंने अपनी जिंदगी में शायद पहली बार इतनी खुशी महसूस की थी.. भ्रमण का दिन (Outing Day) मेरे लिए सबसे ज्यादा खास था। मेरा boating करने का सपना आखिर पूरा हुआ। सूर्यास्त देखा, समुद्र तट देखा.. सब कुछ किसी मूवी सीन जैसा लग रहा था। दिल बस यही चाहता था कि ये पल कभी खत्म न हो, समय वहीं रुक जाए लेकिन यही तो जिंदगी है... कई दिनों बाद आखिर हिमाचली भोजन खाने को मिला... डिनर के बाद हम वापस नेस्ट (NESTT) लौट आए। हम खुश भी थे, लेकिन दिल के किसी कोने में उदासी थी...क्योंकि अगले दिन हमें वापस जाना था। निर्मला महाविद्यालय के शिक्षकों और विद्यार्थियों से जो प्यार, परवाह और सम्मान मिला, वो हमेशा हमारी यादों में रहेगा। वापसी के समय सब बहुत उदास थे। कुछ शिक्षक हमें छोड़ने भी आए। सच कहूँ तो दिल बिल्कुल नहीं कर रहा था उन्हें छोड़कर वापस आने का... लेकिन भारी दिल के साथ हमें ट्रेन में बैठकर केरल को पीछे छोड़ना पड़ा। ट्रेन स्टेशन से चल पड़ी थी, लेकिन हर एक पल बार–बार आँखों के सामने आ रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे सब कुछ पीछे छूट रहा हो। दिल बहुत भारी था...

आभार : धन्यवाद और स्मृतियाँ

अंत में हमारी प्रधानाचार्या महोदया डॉ उरसेम लता और बिंदु महोदया को दिल से धन्यवाद, जिनकी वजह से हमें यह मौका मिला और इतना कुछ सीखने को मिला। और निर्मला महाविद्यालय, केरल के सभी शिक्षकों और विद्यार्थियों को बहुत–बहुत धन्यवाद, जिनकी वजह से यह पूरा सफर इतना खूबसूरत और यादगार बन गया... लेकिन क्या कर सकते थे...यही जिंदगी है।

''कुछ सफर खत्म नहीं होते, वो बस खूबसूरत यादों में बदल जाते हैं...।''

राजकीय महाविद्यालय, पनारसा, मण्डी, हि.प्र.।

स्मृतियों के झरोखे से

गिरिराज राणा

देवभूमि से ईश्वर के अपने देश तक एक अविस्मरणीय सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक यात्रा संस्मरण (हिमाचल से केरल) बर्फ की वादियों से उठकर जो कारवां चला था, उसे समंदर की लहरों ने बांहों में समेट लिया। ट्रेन की पटरियों पर छूटते गए अनगिनत शहर, और अजनबी चेहरों ने दिल में हमेशा का बसेरा कर लिया।

यात्रा : एक अनूठा सफर और शुरुआत का डर हमारा यह जो सफर था, जब हिमाचल प्रदेश से केरल के लिए शुरू हुआ, जो कि केरल के निर्मला महाविद्यालय, मुवाट्टुपुझा के बीच एमओयू के अंतर्गत हम गए थे, तो हमें यही डर रहता था कि क्या यह सफ़र सफ़ल भी होगा कि नहीं। जब हम ट्रेलर से दिल्ली को जा रहे थे, तो यकीन नहीं हो रहा था कि हम जा रहे हैं, पर हाँ, हम जा रहे थे। वैसे मुझे घूमने में मजा नहीं आता, पर जब सीनियर्स और दोस्तों के साथ गए तो मुझे यूँ लगा कि शायद वहीं बस जा जाता तो अच्छा होता। कुछ सामान खो न जाए, बहुत सा डर लगता था, पर यह कुछ नहीं हुआ। जब दिल्ली से हमने केरल के लिए train ली, फिर ट्रेन में पहली बार का सफ़र जो बहुत ही यादगार रह गया। 3 दिन के कठिन, यादगार, हँसी, नए लोग और कुछ सीख के साथ हम केरल पहुँचे। वहाँ हम नेस्ट (NESTT) में ठहरे थे। हर 3 बच्चों के लिए एक कमरा था। हर रात हँसी-मजाक और बहुत मजे के साथ सब हुआ। वहाँ पर कोई भी स्ट्रेंजर (अजनबी) जैसा नहीं लगा, लगा मानो पहले से जानते थे, कितने सालों बाद मिले हैं।

अभिव्यक्ति : सांस्कृतिक संगम और खूबसूरत अनुभूतियाँ

हम सभी ने अपना Culture और प्रस्तुति वहाँ पेश की, क्योंकि यह एक कल्चरल एक्सचेंज प्रोग्राम (सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम) था। सभी का व्यवहार दोस्तों जैसा था, वही कहा मैंने मानो कि पहले मिल चुके हों। हम वहाँ घूमने भी गए थे, जो कि मुझे सपने सा आभास हो रहा था, पर हम गए थे। हम बीच (समुद्र तट) पर गए थे और मुझे बस यह सा लगा कि समय थम सा जाता तो बहुत अच्छा होता, पर खैर... वहाँ केरल का भोजन भी अत्यधिक अलग और स्वादिष्ट था, कभी ऐसा कुछ नहीं खाया था पर बहुत अच्छा था। अंतिम दिन में केरल का 'सधया' 'भोजन', जो केले के पत्ते पर होती है, वो खाया...वो तो क्या ही कहें, अत्यधिक स्वादिष्ट था!

जब आखिर में हिमाचल घर को जा रहे थे, थोड़ी खुशी तो हुई पर उदासी भी उतनी ही थी। वहाँ सभी का friendly (मित्रतापूर्ण) व्यवहार और इतनी अच्छी यादों के साथ हमें जाना पड़ा। जब हम हिमाचल से केरल गए थे तो सभी बहुत खुश थे, पर जब हम केरल से हिमाचल को गए तो इसका उल्टा हुआ, सभी उदास थे मानो खुशी सी रही ना हो। पर हाँ, धीरे-धीरे कर ठीक हूँ अब, और केरल को धीरे-धीरे पीछे छोड़ आखिर में सभी घर पहुँच जाते हैं।

कुछ सफर सिर्फ दूरियाँ तय नहीं करते, वो दिलों के बीच के फासले हमेशा के लिए मिटा देते हैं।

आभार : मार्गदर्शकों एवं महाविद्यालय को धन्यवाद

महाविद्यालय की प्राचार्या डॉ. उरसेम लता का बहुत-बहुत आभार, जो आपने हमें यह मौका दिया, जिससे बहुत सी चीजें और अनुभव मिले और बिंदु मैम का भी, जिन्होंने हमें हर समय पर साथ दिया। और आखिर में, निर्मला महाविद्यालय, केरल के सभी शिक्षकों और विद्यार्थियों का भी दिल से धन्यवाद, जिन्होंने इस सफर के हर एक पल को इतना आत्मीय और कभी न भूलने वाला बनाया। यह सफ़र हमेशा हमारी खूबसूरत यादों में जिंदा रहेगा। सफर खत्म हो गया और रास्ते पीछे छूट गए, पर वो यादें और वो दोस्ती अब उम्र भर का सरमाया है।

राजकीय महाविद्यालय, पनारसा

साक्षात्कार

अनुभवों की बातचीत

कहावतों में छुपी प्रकृति

रीना चौहान का डॉ. दयानंद गौतम के साथ 'कहावतों में छुपी प्रकृति' विषय संदर्भ को लेकर हुए साक्षात्कार के अंश.

रीना चौहान

डॉ. दयानंद गौतम

रीना चौहान : सर, हमने सुना है कि आपका कहावतों पर बहुत गहन काम है। आपसे रोजमर्रा की बातचीत में भी कहावतों का प्रयोग सुनते हैं। हमें पता चला है कि आपको पीएचडी किए हुए चालीस साल से ज्यादा समय हो गया और उसके बावजूद आप आज भी बातचीत में कहावतों का प्रयोग करते हैं। मैं आपको कहावतों से संबंधित कुछ प्रश्न पूछना चाहती हूँ जो हमारे कॉलेज के ई–रिसर्च जर्नल हरकारा में छपेंगे। यह मेरा पहला प्रयास है, इसलिए मैं चाहती हूँ कि आप मुझे इनके बारे में बताएँ। यह मेरे लिए बहुत अच्छा अनुभव होगा।
रीना चौहान : बादलों से जुड़ी कहावतें : सर, हमारे बुजुर्ग बादल देखकर मौसम का अंदाजा लगा लेते थे। क्या बादलों से जुड़ी कोई ऐसी कहावतें हैं जो आज भी ग्रामीण जीवन में इस्तेमाल होती हैं? उनका अर्थ भी बताइए।

डॉ. दयानंद गौतम : हमारे पूर्वज प्रकृति के बड़े सूक्ष्म पर्यवेक्षक थे। उन्होंने बादलों के रंग, दिशा और स्वरूप को देखकर वर्षा का अनुमान लगाने की अनेक कहावतें बनाई थीं। उन्हीं में से एक कहावत है –

''बादल पौकै सौन्हा, हौल़ जूं रखा कौन्धा।
बादल पौकै दोती, हौल़ जूं रखा कोती।''

इसका अभिप्राय यह है कि यदि सांझ के समय बादलों के झुरमुट लालिमा लिए हुए, पके हुए या सुनहरे दिखाई दें, तो समझना चाहिए कि तत्काल वर्षा की संभावना नहीं है। इसलिए किसान को सलाह दी जाती है कि वह अपने हल, जूँगड़ा और खेती के औजार निश्चिंत होकर किसी कोने या काटकर, सुरक्षित स्थान पर रख दें क्योंकि उस रात बारिश नहीं होगी। परंतु यदि प्रातःकाल सूर्योदय के समय बादल लालिमा लिए हुए या पके हुए दिखाई दें, तो यह वर्षा का संकेत माना जाता है। तब किसान को सावधान रहना चाहिए, क्योंकि दिन चढ़ने के साथ वर्षा आरम्भ हो सकती है। इसलिए खेती के कार्य और आवश्यक प्रबंध पहले ही कर लेने चाहिए। यह कहावत केवल शब्दों का खेल नहीं, बल्कि पीढ़ियों के अनुभव का सार है। आधुनिक मौसम विज्ञान भी मानता है कि प्रातःकाल की लालिमा और बादलों की विशेष बनावट कई बार आने वाले आर्द्र मौसम और वर्षा का संकेत देती है। इस प्रकार हमारे लोक जीवन में बादल केवल आकाश की शोभा नहीं, बल्कि किसान के लिए प्रकृति का संदेश लेकर आने वाले दूत माने गए हैं।

रीना चौहान : पेड़ों से जुड़ी कहावतें : पेड़ हमारे जीवन का आधार हैं। क्या लोक–जीवन में पेड़–पौधों से जुड़ी कोई कहावतें प्रचलित हैं जो हमें प्रकृति से जोड़ना सिखाती हैं?

डॉ. दयानंद गौतम : वृक्ष मानव जीवन के सबसे बड़े सहचर हैं। वे हमें छाया, फल, औषधि, ईंधन, वर्षा और शुद्ध वायु प्रदान करते हैं। यही कारण है कि हमारे लोक जीवन में वृक्षों के प्रति आदर और संरक्षण की भावना अनेक कहावतों के माध्यम से व्यक्त की गई है। एक लोक कहावत कही जाती है –

''घौणी बूटी रै घौणै ज़लाड़ै,

बोहू झूरी रै थोड़ै दिहाड़े।''

इस कहावत का सांकेतिक अर्थ यह है कि जो वृक्ष जितना विशाल, गहरा और जड़ों से जुड़ा हुआ होता है, वह उतना ही स्थायी और उपयोगी होता है। उसकी शाखाएँ फैलती हैं, जड़ें धरती को थामे रखती हैं और वह लंबे समय तक सबको आश्रय देता है। इसके विपरीत यहां संदेश दिया जा रहा है कि मनुष्य में जब अधिक प्रेम का प्रदर्शन हो उसके दिन थोड़े होते हैं अर्थात् जो केवल ऊपर से दिखावटी हो, जिसकी प्रेम में जड़ें गहरी न हों, उसका अस्तित्व अधिक समय तक नहीं टिकता।

लोकजीवन में यह शिक्षा प्रेमी ह्रदय पर भी लागू की गई है कि स्थायित्व बाहरी प्रदर्शन से नहीं, बल्कि गहराई, विनम्रता और मजबूत आधार से प्रेम परिपक्व व सुदृढ़ होता है, जैसे एक गहरी जड़ों वाला प्रेम का अस्तित्व संसार में स्थायित्व प्रदान करता है। इसी प्रकार एक और प्रसिद्ध लोकवचन है–

''एक बूटा दस बेटे बराबर।''

यहाँ विशेश रूप से पीपल जैसे वृक्ष की महिमा का वर्णन किया गया है। लोकमान्यता थी कि एक पीपल का वृक्ष अनेक वृक्षों के समान लाभ पहुँचाता है। वह पर्यावरण को शुद्ध करता है, पक्षियों को आश्रय देता है, भूमि को बाँधे रखता है और जीवनदायी वातावरण निर्मित करता है। हमारे पूर्वजों ने अनुभव किया था कि जहाँ वृक्ष अधिक होते हैं वहाँ भूमि का कटाव कम होता है, वर्षा का संतुलन बना रहता है, पशु–पक्षियों का जीवन सुरक्षित रहता है और मानव समाज भी समृद्ध होता है। इसलिए वे वृक्षारोपण को केवल पर्यावरण का नहीं, बल्कि धर्म, संस्कृति और लोककल्याण का कार्य मानते थे।

अतः लोककथाएँ और कहावतें हमें यही सिखाती हैं कि वृक्ष केवल प्रकृति की शोभा नहीं हैं, बल्कि जीवन के रक्षक हैं। जिस समाज में वृक्षों का सम्मान होता है, वहाँ प्रकृति और संस्कृति दोनों सुरक्षित रहती हैं।

रीना चौहान : बारिश से जुड़ी कहावतें : किसान का पूरा साल बारिश पर टिका होता है। बारिश के शुभ–अशुभ संकेतों को लेकर कौन–कौन सी कहावतें हमारे समाज में कही–सुनी जाती हैं?

डॉ. दयानंद गौतम : हिमालयी लोक जीवन प्रकृति के अत्यंत निकट रहा है। खेती, पशुपालन और दैनिक जीवन का अधिकांश भाग मौसम पर निर्भर करता था। इसलिए हमारे पूर्वजों ने वर्षा के अनेक संकेतों को अनुभव के आधार पर लोक कथाओं और कहावतों में संजोया। कुल्लू क्षेत्र में जब एक मास समाप्त होकर दूसरा मास प्रारम्भ होता है, तब संक्रांति आती है। संक्रांति से एक दिन पूर्व के दिन को –

'कोड़ी' तथा उसके अगले दिन को 'बाही' कहा जाता है। लोकमान्यता के अनुसार –

''कोड़ी री औठ, साजे री बारा। बाही बौरषै ता म्हीना सारा।''

अर्थात् यदि कोड़ी के दिन वर्षा हो जाए तो लगभग आठ दिनों तक वर्षा का प्रभाव बना रहता है। यदि संक्रांति के दिन वर्षा हो तो बारह दिनों तक मौसम वर्षामय रहने की संभावना मानी जाती है। और यदि बाही के दिन से वर्षा प्रारम्भ हो जाए तो पूरे मास वर्षा का क्रम बना रह सकता है। यह लोकानुभव पर आधारित मौसम का एक पारंपरिक अनुमान था, जिसे किसान अपनी कृषि योजनाओं में ध्यान में रखते थे। इसके साथ ही लोकजीवन का एक व्यावहारिक पक्ष भी इन कहावतों में दिखाई देता है। पहाड़ों में लोगों का जीवन पशुपालन, घास काटने, लकड़ी लाने, खेती–बाड़ी और सामाजिक व्यवहार पर आधारित था। लगातार वर्षा होने पर ये सभी कार्य कठिन हो जाते थे। इसी अनुभव से एक कहावत प्रचलित हुई...

''रेहिरा एक दिहाड़ा बि माड़ा। अर्थात् वर्षा का एक दिन भी कई बार इतना कठिन और चुनौतीपूर्ण हो जाता है कि सामान्य जीवन–क्रम बाधित हो जाता है। घास लाना, पशुओं की देखभाल करना, खेतों में जाना और एक गाँव से दूसरे गाँव तक पहुँचना सब कुछ कठिन हो जाता है। इस प्रकार लोक कहावतों में

केवल मौसम का अनुमान ही नहीं, बल्कि पर्वतीय समाज का संघर्ष, अनुभव और प्रकृति के साथ उसका गहरा संबंध भी प्रतिबिंबित होता है। हमारे पूर्वजों ने प्रकृति को पढ़कर जो ज्ञान अर्जित किया, वही आज लोक साहित्य और लोक संस्कृति के रूप में हमारे सामने सुरक्षित है।

रीना चौहान : धूप से जुड़ी कहावतें : कड़क धूप हो या गुनगुनी धूप, हर मौसम का अपना महत्व है। धूप से जुड़ी ऐसी कौन सी कहावतें हैं जो समय, मेहनत या जीवन के अनुभव को दर्शाती हैं?

डॉ. दयानंद गौतम : पहाड़ का मौसम अत्यंत चंचल माना जाता है। यहाँ कब धूप निकल आए और कब बादल घिरकर वर्षा होने लगे, इसका अनुमान लगाना कई बार कठिन होता है। इसी अनुभव को लोक समाज ने कहावतों में व्यक्त किया है। एक कहावत है–

''पोषा म्हीने हिंऊ ता हेरा,
जेठा म्हीने रै धूपा न लेरा।''

अर्थात् पौश मास की ठंड और ज्येष्ठ मास की धूप, दोनों ही अपने चरम रूप में प्रभावशाली होती हैं। लोकजीवन ने ऋतुओं की इन चरम स्थितियों को गहराई से अनुभव किया है। इसी प्रकार एक और कहावत प्रचलित है...

''ऐसै धूपा ऐसै गाश,
ग्वालेरी फुआलारी एकै राश।''

अर्थात् एक ओर धूप खिली हुई है और दूसरी ओर वर्षा हो रही है। यह कहावत उस स्थिति में कही जाती है जब सुबह मौसम साफ हो, फिर अचानक वर्षा प्रारम्भ हो जाए, या एक दिशा में वर्षा हो रही हो और दूसरी दिषा में धूप दिखाई दे रही हो। इस कहावत का सामाजिक अर्थ भी बड़ा रोचक है। ग्वाला (गुआला) सामान्यतः अपने पशुओं को तभी बाहर ले जाता है जब मौसम अनुकूल और साफ हो। दूसरी ओर गड़ेरिया (फुआल) ऐसा व्यक्ति है जिसे वर्षा, धूप या बादलों की परवाह किए बिना अपनी भेड़ों को चराने के लिए निकलना ही पड़ता है। उसका जीवन प्रकृति की कठिन परिस्थितियों से निरंतर जुड़ा रहता है। जब मौसम ऐसा हो कि कहीं धूप है और कहीं वर्षा, तब लोकसमाज हँसते हुए कहता है..

''ग्वालेरी–फुआलारी एके राश।'' अर्थात् आज तो ग्वाले और गड़ेरिए दोनों की दशा समान हो गई है। एक ओर ग्वाला धूप में पशु चरा रहा है और दूसरी ओर गड़ेरिया वर्षा के बीच भी अपनी भेड़ों को चराने में लगा है। प्रकृति ने दोनों को एक ही परिस्थिति में ला खड़ा किया है। इस प्रकार यह कहावत केवल मौसम का वर्णन नहीं करती, बल्कि पर्वतीय पशुपालक जीवन, उसके श्रम, संघर्ष और प्रकृति के साथ उसके गहरे संबंध को भी बड़ी सहजता से अभिव्यक्त करती है। यही लोकसाहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह साधारण अनुभवों में भी जीवन का गहरा दर्शन छिपा देता है।

रीना चौहान : चाँद से जुड़ी कहावतें : चाँद हमेशा से कवियों और आम लोगों के लिए आकर्षण का केंद्र रहा है। चाँद की घटती–बढ़ती कलाओं या सुंदरता पर कोई कहावतें आप बताना चाहेंगे?

डॉ. दयानंद गौतम : कुल्लू के लोक साहित्य में चाँद का प्रयोग प्रायः सौंदर्य, कोमलता और आकर्षण के प्रतीक के रूप में मिलता है। किसी सुंदर मुख, तेजस्वी व्यक्तित्व अथवा प्रियजन की तुलना चंद्रमा से करना लोकभाषा की स्वाभाविक शैली रही है। परंतु इसके साथ–साथ लोकजीवन ने सूर्य और चंद्रमा के माध्यम से गहन जीवन–दर्शन भी प्रस्तुत किया है। एक लोकवचन प्रचलित है...

''नौई किनारे लागी जातरा,
सूरज–चंद्र भी हुए रीणे जीणे,

तेरी केतरी मात्रा।'' इसका भावार्थ अत्यंत गूढ़ है। लोकमानस संसार को एक बहती हुई नदी के समान देखता है। इस नदी के दोनों किनारों पर जीवन और मृत्यु का मेला लगा हुआ है। कोई आता है, कोई चला जाता हैय कोई प्रतिष्ठा पाता है, कोई सत्ता प्राप्त करता है। कोई धन का अभिमान करता है, तो कोई अपने वैभव का प्रदर्शन करता है। किन्तु लोकदर्शन मनुष्य को स्मरण कराता है कि...

''सूर्य–चंद्र भी हुए रीणे जीणे।'' अर्थात् सूर्य और चंद्रमा जैसे महान और प्रकाशमान तत्व भी एक समान नहीं रहते। सूर्य का तेज भी ऋतुओं के अनुसार बदलता हुआ प्रतीत होता है। चंद्रमा भी कभी पूर्णिमा की पूर्ण आभा में चमकता है और कभी अमावस्या में दृष्टिगोचर तक नहीं होता। उसकी कलाएँ घटती–बढ़ती रहती हैं। जब स्वयं सूर्य और चंद्रमा स्थायी वैभव के प्रतीक नहीं हैं, तब मनुष्य का पद, प्रतिष्ठा, धन, यश अथवा सत्ता कितने समय तक स्थिर रह सकती है? इसलिए लोकवचन प्रश्न करता है...

''तेरी केतरी मात्रा?'' अर्थात् फिर तेरी क्या औकात, क्या स्थायित्व, क्या स्थायी महत्ता? यह कहावत मनुष्य को विनम्रता का संदेश देती है। यह बताती है कि संसार में कुछ भी चिरस्थायी नहीं है। इसलिए धन, पद और अधिकार का अहंकार करने के स्थान पर मनुष्य को सदाचार, सेवा, करुणा और विनम्रता का मार्ग अपनाना चाहिए। लोकसाहित्य की यही विशेषता है कि वह सूर्य और चंद्रमा जैसे प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से भी जीवन का ऐसा गहन दर्षन प्रस्तुत कर देता है, जो बड़े–बड़े ग्रंथों की शिक्षा को सरल शब्दों में समझा देता है।

''अभिमान क्षणिक है, परंतु विनम्रता शाश्वत है''... यही इस लोकवचन का मूल संदेश है।

रीना चौहान : पानी से जुड़ी कहावतेंरू कहते हैं 'जल ही जीवन है'। पानी की कीमत, उसके बहाव या बचत को लेकर कौन सी कहावतें हमारी संस्कृति में पीढ़ियों से चली आ रही हैं?

डॉ. दयानंद गौतम : हिमालयी जीवन में जल का महत्व अत्यंत विशेष रहा है। पर्वतीय क्षेत्रों में जल स्रोतों की उपलब्धता ही कई बार किसी बस्ती की समृद्धि और कठिनाई का निर्धारण करती थी। इसलिए लोक समाज ने पानी को केवल एक प्राकृतिक तत्व नहीं, बल्कि जीवन, समृद्धि और ईश्वर–कृपा का प्रतीक माना है। देव परंपरा में एक रोचक लोकवचन सुनने को मिलता है। जब किसी देवता का गूर (देववक्ता) देवशक्ति की महिमा का वर्णन करता है, तब वह कहता है...

''चूलू रै पाणिए हाथी निहा सा।''

अर्थात् हम चुल्लू भर पानी में भी हाथी को नहला सकते हैं। इसका शाब्दिक अर्थ भले ही असंभव प्रतीत हो, परंतु इसका भावार्थ यह है कि ईश्वरीय शक्ति और कृपा के सामने साधन की अल्पता बाधा नहीं बनती। जहाँ सामान्य दृष्टि को कमी दिखाई देती है, वहीं दिव्य शक्ति उस कमी को भी पर्याप्त बना सकती है। यह कहावत जल की महत्ता के साथ–साथ देव विश्वास और लोक आस्था की अभिव्यक्ति भी है। इसी प्रकार कुल्लू की ऊपरी घाटियों में जल के अभाव से जुड़ी एक कहावत प्रचलित है...

''दूई ग्रां तराषी – दचाणी चिन्दी छाह मूलै पाणी।'' यहाँ तराशी और दचाणी ऊँचाई पर स्थित ऐसे ग्रामों के प्रतीक हैं जहाँ परंपरागत रूप से जलस्रोत सीमित रहे हैं। लोक समाज अनुभव के आधार पर कहता है कि वहाँ दूध, दही या लस्सी तो किसी प्रकार मिल सकती है, परंतु पानी बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है। कई बार लोगों को दूरस्थ स्रोतों से पानी लाना पड़ता था। इस कहावत के माध्यम से लोक जीवन जल के वास्तविक मूल्य को समझाता है। जिन क्षेत्रों में पानी सहज उपलब्ध नहीं होता, वहाँ उसका प्रत्येक घड़ा श्रम, धैर्य और संघर्ष का प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार दोनों कहावतें जल के दो भिन्न रूपों को सामने लाती हैं। पहली कहावत जल को देवकृपा और सामर्थ्य का प्रतीक बनाती है, जबकि दूसरी जल की दुर्लभता और उसके अमूल्य महत्व का स्मरण कराती है। लोक समाज मानो यह संदेश देता है कि..

''जिसे पानी का मूल्य ज्ञात है, वही जीवन का मूल्य भी समझ सकता है।''

यही कारण है कि हिमालयी लोक संस्कृति में जल को केवल संसाधन नहीं, बल्कि प्रकृति के सबसे पवित्र उपहारों में से एक माना गया है।

रीना चौहान : आसमान से जुड़ी कहावतें : खुला आसमान उम्मीदों का प्रतीक है। आसमान की ऊँचाई, रंग या विशालता को लेकर लोक में क्या कहावतें प्रचलित हैं?

डॉ.दयानंद गौतम : लोक जीवन में आकाश केवल प्रकृति का एक तत्त्व नहीं है, बल्कि आशा, अनंतता और परम सत्ता का प्रतीक माना गया है। मनुष्य जब अपनी सीमाओं से ऊपर उठकर किसी महान शक्ति का अनुभव करना चाहता है, तो उसकी दृष्टि स्वाभाविक रूप से आकाश की ओर उठती है। यही कारण है कि लोकमानस ने आकाश में ईश्वर की व्यापक सत्ता का अनुभव किया है। जब समाज असत्य, अन्याय, अत्याचार, सामाजिक अव्यवस्था अथवा प्राकृतिक आपदाओं से व्यथित होता है, तब वह अपनी पीड़ा किसी सांसारिक सत्ता से नहीं, बल्कि परमात्मा से संबोधित करता है। ऐसे अवसरों पर एक लोकवचन कहा जाता है...

''सरगा हेठै निहारा।''

इस लोकवचन का भाव यह है कि यदि आकाश जैसी विशाल और दिव्य सत्ता में भी अंधकार छा सकता है, यदि वहाँ भी बादल घिर सकते हैं, तो संसार में दुःख और संकट का आना कोई असामान्य बात नहीं है। किन्तु इस कहावत का आशय केवल निराशा नहीं है। लोक जीवन यह भी समझता है कि आकाश का अंधकार स्थायी नहीं होता। बादल छँटते हैं, प्रकाश पुनः लौटता है और नया प्रभात उदित होता है। इसलिए यह वचन मनुष्य को धैर्य और विश्वास का संदेश देता है। लोकदर्शन मानों कहता है...

जब आकाश में भी अंधकार आता है, तब मनुष्य को अपने दुःखों से विचलित नहीं होना चाहिएय क्योंकि अंधकार के बाद प्रकाश का आगमन भी निश्चित है। इस प्रकार आकाश से जुड़ी यह लोक कहावत मानव जीवन को गहन आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान करती है। यह सिखाती है कि संकट, अन्याय और पीड़ा के क्षणों में भी विश्वास नहीं छोड़ना चाहिए। परमात्मा की व्यवस्था व्यापक है, और समय आने पर अंधकार को हटाकर प्रकाश का मार्ग भी वही प्रशस्त करता है। यही लोक साहित्य का सौंदर्य है... वह आकाश को देखकर केवल मौसम की बात नहीं करता, बल्कि मनुष्य को आशा, धैर्य और ईश्वर– विश्वास का अमूल्य संदेश भी देता है।

रीना चौहान : सर्दियों से जुड़ी कहावतें : पहाड़ों में सर्दी का अपना एक अलग रंग है। सर्दी के मौसम, पाले या बर्फ से जुड़े अनुभवों पर कौन सी कहावतें बुजुर्ग सुनाया करते थे?

डॉ. दयानंद गौतम : हिमालयी क्षेत्रों में ऋतुओं का प्रभाव अत्यंत गहरा होता है। इसलिए लोक समाज ने मौसम के सूक्ष्म परिवर्तनों को बड़ी बारीकी से देखा और उन्हें कहावतों के रूप में सुरक्षित रखा। विशेष रूप से शीत ऋतु और ग्रीष्म ऋतु के बीच होने वाले अप्रत्याशित बदलाव लोक जीवन का महत्वपूर्ण अनुभव रहे हैं। एक कहावत प्रचलित है...

''जेठ जा सा पोषा रा पाहुणा,
पोश वेशा सा जेठा निहालदा।''

इसका आशय यह है कि कभी–कभी ज्येष्ठ मास में भी ऐसी ठंड पड़ जाती है कि मानो पौष मास स्वयं अतिथि बनकर आ गया हो। लोकमानस इसे इस प्रकार देखता है कि यदि ग्रीष्म ऋतु में असामान्य शीतलता अनुभव हो, तो कहा जाता है कि –''पोश ज्येष्ठ का मेहमान बन गया है।''

इसके विपरीत एक और रोचक अनुभव लोकजीवन व्यक्त करता है कि पौष मास में यद्यपि सूर्य की किरणें अपेक्षाकृत कम समय तक मिलती हैं और सूर्य दूर प्रतीत होता है, फिर भी जब धूप निकलती है तो उसमें अद्भुत सुख और ऊष्मा का अनुभव होता है। इसलिए पहाड़ों में सर्दियों की धूप को किसी वरदान से कम नहीं माना गया। यह कहावत हमें बताती है कि प्रकृति केवल निश्चित नियमों से नहीं चलती, बल्कि

समय–समय पर अपने भिन्न रूप भी दिखाती है। कभी ग्रीष्म में शीत का अनुभव होता है और कभी शीतकाल की धूप ग्रीष्म जैसी सुखद गर्माहट दे जाती है। लोकदर्शन का संदेश इससे भी गहरा है। जीवन में भी परिस्थितियाँ सदैव एक जैसी नहीं रहतीं। कभी कठिन समय में सुख की किरण मिल जाती है और कभी अनुकूल समय में भी चुनौतियाँ सामने आ जाती हैं। इसलिए मनुष्य को परिस्थितियों के परिवर्तन के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए। इस प्रकार सर्दियों और ऋतु–परिवर्तन से जुड़ी ये लोककथनियाँ केवल मौसम का वर्णन नहीं करतीं, बल्कि प्रकृति की अनिश्चितता और जीवन की परिवर्तनशीलता का भी सुंदर बोध कराती हैं। यही लोकज्ञान की विशेषता है कि वह साधारण मौसम के अनुभव को भी जीवन–दर्शन में बदल देता है।

रीना चौहान : नदियों–पहाड़ों से जुड़ी कहावतें : कुल्लू–मंडी क्षेत्र नदियों और पहाड़ों का देश है। क्या यहाँ की नदियों, पहाड़ों या ब्यास नदी को लेकर भी कोई खास कहावतें मिलती हैं?

डॉ.दयानंद गौतम : कुल्लू की सभ्यता और संस्कृति का विकास नदियों के किनारे हुआ है। व्यास, पार्वती, तीर्थन और अनेक जलधाराएँ यहाँ के जीवन की आधारशिला रही हैं। इसलिए लोकजीवन में नदियाँ केवल जल की धारा नहीं, बल्कि जीवन, संघर्ष, आस्था और संबंधों का प्रतीक बन गई हैं। एक प्रसिद्ध लोक कहावत है...

''नौईए सेऊ मनुखै देऊ।''

यहाँ ''सेऊ'' का अर्थ नदी पर बनाया जाने वाला पुल या पारगमन का साधन है। इस कहावत का भाव यह है कि नदी होगी तभी पुल का महत्व होगा, और मनुष्य होंगे तभी देवत्व की अनुभूति होगी। जिस प्रकार नदी के बिना पुल का कोई प्रयोजन नहीं, उसी प्रकार मानव समाज के बिना देव परंपरा का भी कोई अर्थ नहीं रह जाता। लोकदर्शन यहाँ एक गहरी बात कहता है कि देवता केवल मंदिरों में नहीं बसते, बल्कि मनुष्य के सद्गुणों, श्रद्धा, सेवा और आस्था में निवास करते हैं। मनुष्य और देव, नदी और पुल की भाँति एक–दूसरे के पूरक हैं। इसी प्रकार एक दूसरी कहावत लोक जीवन के संघर्ष और आत्मरक्षा के स्वाभाविक भाव को व्यक्त करती है...

''दुई बैहणी नौई, आप आपणी पौई।''

इस कहावत के पीछे एक लोकचित्र है। दो बहनें यात्रा पर जा रही थीं। मार्ग में नदी का प्रवाह तीव्र था और वे उसमें गिर पड़ीं। संकट की उस घड़ी में दोनों अपने–अपने बचाव में लग गईं। लोकसमाज इस घटना को जीवन–दर्शन के रूप में देखता है। जब मनुष्य कठिन परिस्थितियों, संकटों या जीवन–संघर्षों में फँसता है, तब अंततः उसे अपने विवेक, साहस और प्रयास का सहारा लेना पड़ता है। संकट की घड़ी में हर व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करता है। यह कहावत किसी स्वार्थ का समर्थन नहीं करती, बल्कि यह बताती है कि जीवन की कुछ परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही संघर्ष करना पड़ता है। जैसे नदी में गिरा व्यक्ति पहले स्वयं को संभालने का प्रयास करता है, वैसे ही जीवन की अनेक चुनौतियों में आत्मबल और आत्मप्रयास का महत्व सबसे अधिक होता है। इस प्रकार नदियों से जुड़ी ये दोनों कहावतें दो भिन्न संदेश देती हैं...

''नौईए सेऊ मनुखै देऊ'' – समाज, आस्था और परस्पर निर्भरता का संदेश। ''दुई बैहणी नौई आप आपणी पोई'' ... जीवन–संघर्ष, आत्मरक्षा और आत्मप्रयास का संदेश। यही लोकसाहित्य की विशेषता है कि वह नदी जैसी साधारण दिखाई देने वाली प्राकृतिक धारा के माध्यम से भी मानव जीवन के गहन सत्य और दर्शन को सहज शब्दों में व्यक्त कर देता है।

रीना चौहान : हवा और आँधी से जुड़ी कहावतें : हवा का रुख देखकर लोग कई बातों का अंदाजा लगाते थे। हवा, आँधी या तूफान से जुड़ी कौन सी कहावतें संकट या बदलाव का संकेत देती हैं?

डॉ. दयानंद गौतम : हिमालयी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों ने प्रकृति का इतना सूक्ष्म अध्ययन किया था कि वे पर्वतों, हवाओं और बादलों की दिशा देखकर ही वर्शा का अनुमान लगा लेते थे। यह अनुभव पीढ़ियों तक लोक कहावतों के रूप में सुरक्षित रहा। एक कहावत प्रचलित है...

''कोट कौण्ढी गिड़की, बशौणा सेर रिड़की।''

इस कहावत में कोटकंडी एक ऊँची पर्वत–श्रृंखला अथवा पहाड़ी क्षेत्र का संकेत है, जबकि बिसौणा सेर खेतों और कृषि–भूमि वाले क्षेत्र का प्रतीक है। लोकानुभव के अनुसार जब कोटकंडी की दिशा में बादल गरजते हैं, तो सामान्यतः लोग समझ जाते थे कि वर्षा उस क्षेत्र में नहीं पहुँचेगी जहाँ बिसौणा के खेत स्थित हैं। पर्वतों की ऊँचाई, हवाओं की दिशा और बादलों की गति के कारण बादल अपना मार्ग बदल लेते हैं और किसी दूसरी घाटी या पर्वतीय क्षेत्र में जाकर बरस जाते हैं। इसी अनुभव को लोकसमाज ने संक्षेप में कहा.

''कोट कोण्ही गिड़की, बषौणा सेर रिड़की।''

अर्थात् कोट कोण्ही में गरजने वाले बादल आवश्यक नहीं कि बिशौणा के खेतों को भी जल देंय वे किसी दूसरी दिषा में बरस सकते हैं और बिसौणा की भूमि वर्षा से वंचित रह सकती है। यह कहावत केवल मौसम का अनुमान नहीं है, बल्कि लोकजीवन के उस गहरे पर्यावरणीय ज्ञान का प्रमाण है, जिसे आज हम स्थानीय मौसम विज्ञान (Local Weather Knowledge) कह सकते हैं। हमारे पूर्वज जानते थे कि पर्वत, घाटियाँ और हवाएँ वर्शा के स्वरूप को प्रभावित करती हैं। इसलिए वे बादलों की गर्जना सुनकर ही आने वाले दिनों की कृषि योजनाओं का अनुमान लगा लेते थे। इस प्रकार यह कहावत हमें बताती है कि लोक समाज प्रकृति का केवल दर्षक नहीं था, बल्कि उसका गहन अध्येता भी था। हवा, बादल और पर्वत उसके लिए जीवंत संकेत थे, जिनसे वह अपने जीवन और खेती का मार्ग निर्धारित करता था।

रीना चौहान : मिट्टी और खेती से जुड़ी कहावतें : मिट्टी से ही अन्न उपजता है। मिट्टी की उर्वरता, बुआई या फसल से जुड़ी ऐसी कौन सी कहावतें हैं जो किसानों की समझ को दर्शाती हैं?

डॉ. दयानंद गौतम : लोकसाहित्य में मिट्टी केवल धरती का एक अंश नहीं है, बल्कि जीवन, संस्कृति, परिवेश और मानव संबंधों का प्रतीक भी है। हमारे पूर्वजों ने मिट्टी के माध्यम से समाज में होने वाले परिवर्तनों और परस्पर आदान–प्रदान को भी व्यक्त किया है। एक लोक कहावत है...

''न्यूल़ा री माटी पहाड़ा बै एणी,
पाहड़ै री माटी न्यूल़ा बै जाणी।''

यहाँ ''निहलैढ'' का अर्थ समतल भूमि अथवा मैदानी क्षेत्र से है और ''पाहड़ै'' का अर्थ पर्वतीय क्षेत्र से है। प्रारंभिक दृष्टि में यह कहावत केवल मिट्टी के स्थानांतरण की बात प्रतीत होती है, परंतु इसका आशय कहीं अधिक व्यापक है। लोकमानस कहता है कि मैदानी क्षेत्र की मिट्टी पहाड़ों तक पहुँचती है और पहाड़ों की मिट्टी मैदानों तक जाती है। अर्थात प्रकृति और समाज दोनों में निरंतर आदान–प्रदान चलता रहता है। पुराने समय में जब आवागमन के साधन सीमित थे, तब यह बात केवल प्रतीकात्मक लगती थी। किंतु समय के साथ जब मार्ग बने, वाहन चलने लगे, व्यापार बढ़ा, यात्राएँ होने लगीं, तीर्थ और धार्मिक अनुष्ठानों के लिए लोगों का आना–जाना बढ़ा, तब यह कहावत और अधिक सार्थक दिखाई देने लगी। आज हम देखते हैं कि पहाड़ और मैदान पहले की अपेक्षा कहीं अधिक निकट आ गए हैं। लोगों की संस्कृति, भाषा, रीति–रिवाज, जीवनशैली और विचार एक–दूसरे से प्रभावित हो रहे हैं। मानो सचमुच.. निहलैढ'' की मिट्टी पाहड़ै तक पहुँच रही है और पाहड़ै की मिट्टी निहलैढ तक। लोकदर्शन यहाँ एक गहरा संदेश देता है कि संसार में कोई भी समाज पूर्णतः अलग–थलग नहीं रह सकता। जैसे मिट्टी का कण हवा, जल और यात्रा के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचता है, वैसे ही विचार, संस्कार, ज्ञान और परंपराएँ भी एक–दूसरे से जुड़ती रहती हैं। इस दृष्टि से यह कहावत केवल भौगोलिक परिवर्तन की नहीं, बल्कि सांस्कृतिक समन्वय और सामाजिक संपर्क की

भी प्रतीक है। लोक समाज बहुत पहले ही यह समझ चुका था कि जीवन का विकास परस्पर संपर्क और आदान–प्रदान से होता है, अलगाव से नहीं। अतः यह लोक कहावत हमें सिखाती है कि पहाड़ और मैदान, गाँव और नगर, परंपरा और परिवर्तन... ये सब विरोधी नहीं, बल्कि एक–दूसरे के पूरक हैं। जैसे मिट्टी का कण अपनी यात्रा करता है, वैसे ही मानव समाज भी निरंतर संवाद और विकास की यात्रा पर अग्रसर रहता है।

रीना चौहान : ऋतुओं के बदलाव पर कहावतें : सर्दी–गर्मी–बरसात का चक्र जीवन को प्रभावित करता है। ऋतु परिवर्तन को लेकर लोक में क्या कहावतें कही जाती हैं?

डॉ. दयानंद गौतम : हिमालयी लोकजीवन में पर्वत, नाले, बर्फ और वर्षा केवल प्राकृतिक दृश्य नहीं हैं, बल्कि जीवन के शिक्षक भी हैं। यहाँ का मनुष्य प्रकृति के साथ संघर्ष करते हुए जीता है, इसलिए उसकी कहावतों में अनुभव और सावधानी का बड़ा महत्व है। एक लोककथन प्रचलित है...

''हिऊंदा नी जाणा जोता पार।''

''भरियाला नी जाणा नाला पार।''

इस लोकवचन का आशय यह है कि पर्वतीय जीवन में हर समय एक जैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता। जब शिशिर ऋतु आती है, ऊँचे पर्वतों पर बर्फ जमती है, मौसम अचानक बदलता है और प्राकृतिक संकट उत्पन्न होने की संभावना रहती है, तब मनुष्य को अत्यंत सावधानी से चलना चाहिए। इसी प्रकार वर्षाकाल में नालों और खड्डों का स्वभाव भी बदल जाता है। जो नाला सामान्य दिनों में छोटा और शांत दिखाई देता है, वही वर्षा के समय प्रचंड रूप धारण कर सकता है। इसलिए लोकअनुभव चेतावनी देता है कि..वर्षा ऋतु में नालों को हल्के में नहीं लेना चाहिए और बिना आवश्यकता उन्हें पार करने का जोखिम नहीं उठाना चाहिए। यह कहावत केवल भौगोलिक सावधानी नहीं सिखाती, बल्कि जीवन–दर्शन भी प्रदान करती है। लोकमानस कहता है कि जैसे पर्वतों की बर्फ और नालों की धारा का सम्मान करना आवश्यक है, वैसे ही जीवन की परिस्थितियों का भी सही आकलन करना चाहिए। हर समय साहस दिखाना बुद्धिमानी नहीं होता। कई बार संयम और प्रतीक्षा ही सबसे बड़ी बुद्धिमानी होती है। इसलिए यह लोकवचन अत्यंत सात्विक और व्यावहारिक है। इसमें न कोई भय है और न ही अंधविश्वास, बल्कि प्रकृति के प्रति सम्मान, अनुभव से प्राप्त ज्ञान और जीवन की सुरक्षा का संदेष है। लोकसमाज अपने अनुभव से हमें यही सिखाता है कि...

''प्रकृति को जीतने का नहीं, समझने का प्रयास करना चाहिए।''

यही भाव इस पर्वतीय लोक कहावत का मूल संदेश है।

रीना चौहान : आप पीएचडी किए हुए चालीस साल से ज्यादा समय हो गया और उसके बावजूद आप रोजमर्रा की बातचीत में कहावतों का प्रयोग करते हैं। तो बताइए ऐसी कौन सी कहावतें हैं, जिनको आप विद्यार्थियों के लिए संदेश के रूप में देना चाहेंगे?

डॉ. दयानंद गौतम : लोकजीवन में एक और सुंदर उक्ति कही जाती है...

''जूणिए केरु जी,तेइ रा केर ना की?''

अर्थात् जिसका स्वभाव ही मधुर और संतुलित है, उसे किसी से रुष्ट होने की क्या आवश्यकता? और.

''जूणी री झीश, तिइ री की मीश?'' अर्थात जिसका जीवन और व्यवहार स्वयं अनुकरणीय है, उसे बाहरी दिखावे और प्रदर्शन की क्या आवश्यकता? इन लोकवचनों का सार यही है कि मनुष्य का वास्तविक वैभव उसके चरित्र, व्यवहार और सदाचार में है न कि केवल धन, पद और प्रतिष्ठा में। यदि हम आज तक की सभी कहावतों का सार निकालें तो वे हमें यही शिक्षा देती हैं... बादल हमें समय की पहचान सिखाते हैं। वृक्ष हमें धैर्य, गहराई और परोपकार सिखाते हैं। वर्षा हमें प्रकृति की शक्ति का बोध कराती है। धूप हमें आशा और ऊर्जा देती है। चंद्रमा हमें विनम्रता और परिवर्तनशीलता का ज्ञान देता है। आकाश हमें ईश्वर और अनंतता का स्मरण कराता है। जल हमें जीवन का मूल्य समझाता है। नदियाँ हमें संघर्ष और प्रवाह का पाठ पढ़ाती

हैं। मिट्टी हमें अपनी जड़ों से जुड़े रहने की प्रेरणा देती है। पर्वत हमें धैर्य, संयम और दृढ़ता सिखाते हैं। अतः मैं आज के युवाओं से यही कहना चाहूँगा कि आधुनिकता को अवश्य अपनाइए, परंतु अपनी लोकसंस्कृति, लोकभाषा और लोकज्ञान से कभी दूर मत जाइए। जिन कहावतों को हमारे पूर्वजों ने अपने अनुभव से गढ़ा है, उनमें जीवन को सही दिशा देने वाली अनमोल शिक्षाएँ छिपी हुई हैं।

अंततः लोकदर्शन का एक ही संदेश है...

"सत्संग रखो, सदाचार रखो, प्रकृति का सम्मान करो और विनम्रता के साथ जीवन जियो।"

इसी में व्यक्ति का कल्याण है, समाज का कल्याण है और संस्कृति का संरक्षण भी।

रीना चौहान : आप 40 साल से ज्यादा समय से कहावतों को सुनते–सुनाते आ रहे हैं। अगर एक ही कहावत चुनकर आज की पीढ़ी को देनी हो जो उन्हें प्रकृति से जोड़े, तो वो कौन सी होगी और क्यों?

डॉ. दयानंद गौतम : लोक कहावतें केवल शब्दों का संग्रह नहीं हैं, बल्कि हमारे पूर्वजों के अनुभव, तप, चिंतन और जीवन–दर्शन की अमूल्य धरोहर हैं। इनमें प्रकृति का विज्ञान भी है, समाज का व्यवहार भी है और जीवन की नीति भी है। एक लोककहावत है...

"डिलकदै पाथरा पंदै गौंई नी धेरै। पराइ नारी हेरी सँग न करै।
पछाणिआं जानकारा संगै केरिआ सँग। धोई धोई नी जांदा संगता रा रंग।"

इसका भावार्थ है कि ढलकते हुए, अस्थिर पत्थर पर कभी पैर नहीं रखना चाहिए, क्योंकि वह स्वयं भी गिरेगा और आपको भी गिरा देगा। उसी प्रकार जीवन में अस्थिर विचारों, बुरी संगत और दुर्व्यसनों से दूर रहना चाहिए। इसके विपरीत यदि मनुष्य सज्जनों, विद्वानों और चरित्रवान लोगों के साथ रहता है, तो धीरे–धीरे उनके गुण उसके जीवन में उतरने लगते हैं। जैसे वस्त्र किसी रंग में बार–बार डुबोया जाए तो वह उसी रंग का हो जाता है, वैसे ही सत्संग मनुष्य के चरित्र को रंग देता है। और जब यह रंग भीतर उतर जाता है, तब संसार की कोई आँधी उसे मिटा नहीं सकती।

रीना चौहान :– आदरणीय डॉ.दयानंद गौतम जी, आपका बहुत–बहुत धन्यवाद! आपने अपने चालीस से अधिक वर्षों के शोध और गहरे अनुभव का सार इतने सरल और सुंदर शब्दों में हमारे साथ साझा किया। बादलों, पेड़ों, नदियों और पहाड़ों से जुड़ी ये कहावतें केवल भाषा का हिस्सा नहीं हैं, बल्कि यह हमारे पूर्वजों का स्थानीय मौसम विज्ञान और जीवन–दर्शन है। हमारे कॉलेज के ई–रिसर्च जर्नल –'हरकारा' के इस अंक के लिए आपका यह मार्गदर्शन अमूल्य धरोहर साबित होगा। इस पहले प्रयास में मुझे आपसे बहुत कुछ सीखने को मिला। अपना बहुमूल्य समय और ज्ञान देने के लिए मैं आपकी अत्यंत आभारी हूँ। सादर प्रणाम!

परिचय : डॉ.दयानंद गौतम सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय, पनारसा जिला मंडी हिमाचल प्रदेश
आवासीय पता : डॉ.दयानंद गौतम 109/10 साधना स्थली, मियां बेहड़ ढालपुर कुल्लू, हिमाचल प्रदेश 175101

रीना चौहान, कला स्नातक प्रथम वर्ष की छात्रा हैं।

विष और भोट शैल : रहस्यों से घिरा हिमालय का ऐतिहासिक धरोहर गांव पीणी

जहाँ सदियों पुरानी परंपराएँ, अनोखी मान्यताएँ और समृद्ध संस्कृति आज भी जीवंत हैं

पीणी गांव हिमाचल प्रदेश की कुल्लू घाटी में स्थित एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण गांव है, जो अपनी प्राचीन परंपराओं, लोक मान्यताओं और प्राकृतिक सुंदरता के लिए प्रसिद्ध है। गांव विशेष रूप से माता भागासिद्ध से सम्बद्ध है लेकिन यहां 'विष' और 'भोट शैल' की कहानी, पारंपरिक पर्वों, जिनमें स्थानीय देव संस्कृति, रीति-रिवाज और सामुदायिक सहभागिता की अनूठी झलक देखने को मिलती है। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों, घने देवदार के जंगलों और शांत वातावरण से घिरा पीणी गांव हिमालयी विरासत का जीवंत उदाहरण हैं, जहाँ आज भी लोग अपनी सदियों पुरानी सांस्कृतिक पहचान और परंपराओं को सहेजकर रखे हुए हैं। यही कारण है कि पीणी गांव इतिहास, संस्कृति और लोक जीवन को करीब से जानने वाले लोगों के लिए एक विशेष आकर्षण का केंद्र है। आइए, जानें राजकीय महाविद्यालय की छात्रा स्नेहा राणा के साथ हुई हिमतरु के सम्पादक किशन श्रीमान के साथ बातचीत के अंश के माध्यम से इस अद्‌भुत गांव की अनकही कहानी :-

स्नेहा : मुझे ज्ञात हुआ कि आपको यह संरचना/स्तूपनुमा स्थल ट्रैकिंग के दौरान अचानक दिखाई दिया। कृपया बताइए कि आप किस यात्रा/ट्रैक पर गए थे?

किशन : जी हां! मैं गत वर्ष पार्वती घाटी के धरोहर गांव पीणी गया था। हालांकि मैं काफी वर्षों पूर्व इस गांव में गया था, लेकिन उस समय मैं सिर्फ अपनी रिश्तेदारों के घरों तक सीमित रहा। अब जब मैं उस गांव में दूसरी मर्तबा गया तो, मैंने सर्वप्रथम पीणी के ऊपरी गांव 'कसलादी' का भ्रमण किया। वहां पर एक प्राचीन मंदिर दिखा। मंदिर परिसर में चारों ओर व्यवस्थित तरीके से पत्थर से छोटे–छोटे 'स्तूप' दिखाई दिए। मैं इन्हें देखकर हैरान हुआ। हैरान इसलिए हुआ कि इस तरह के स्तूप हिमाचल प्रदेश के बहुत कम स्थानों पर देखने को मिलते हैं।

एक अवधारणा यह भी है कि ये चित्र उत्तराखंड के प्रसिद्ध तुंगनाथ मंदिर परिसर (या बैजनाथ/द्वारहाट क्षेत्र) में स्थित एक ऐतिहासिक शिखर प्रतिरूप या लघु शिवालय स्तम्भ का है। इस पाषाण संरचना की मुख्य विशेषताएं; शिखर स्थापत्य कला : यह उत्तर भारतीय नागर शैली की मंदिर वास्तुकला को दर्शाता है। इसमें पत्थर की कई परतें एक के ऊपर एक रखी गई हैं, जो मंदिर के मुख्य ऊंचे शिखर के सूक्ष्म रूप को प्रदर्शित करती हैं। आमलक इसके सबसे ऊपरी भाग पर एक गोलाकार, धारीदार पत्थर रखा हुआ है, जिसे हिंदू मंदिर वास्तुकला में 'आमलक' कहा जाता है। नक्काशी और लिपि : पत्थर की परतों पर प्राचीन नक्काशी की गई है।

स्नेहा : यह ट्रैक/यात्रा किस स्थान से किस स्थान तक थी?

किशन : मैं आपको एक बात स्पष्ट करना चाहता हूं कि हम विशेषतः ट्रेकिंग के मकसद से पीणी गांव की यात्रा पर नहीं नहीं गए थे। इस गांव में हमारे बहुत–से परिवारजन रहते हैं। मैं एक पारिवारिक समारोह के यहां पर गया था। मेरा मूल स्थान खराहल घाटी के देहणीधार गांव में है और हम यहां से प्रातः ही पार्वती घाटी के शारनी पुल को पार कर छोटी गाड़ी के माध्यम से गांव बनाशा तक पहुंचे। फिर बिलकुल सीधी चढ़ाई चढ़कर पीणी के कसलादी गांव पहुंचे थे।

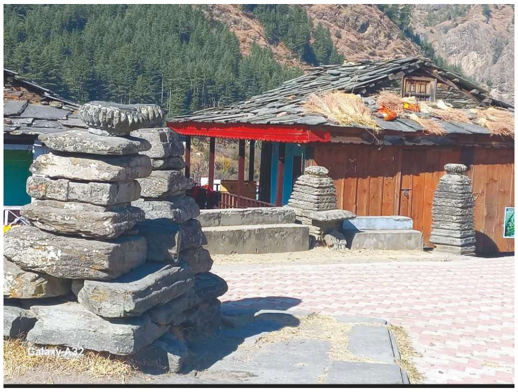

स्नेहा : आप इस यात्रा पर कब गए थे? (माह/वर्ष)
किशन : जी! मैं 2024 के नवम्बर माह में वहां गया था, एक शादी समारोह में।

स्नेहा : इस यात्रा में आपके साथ कौन–कौन लोग थे? (मित्र, स्थानीय गाइड, ट्रैकिंग दल आदि)
किशन : मेरे साथ मेरा छोटा भाई, जो ट्रेकर/गाइड भी है, गोविन्द था, बड़ा भाई बसन्त राम और भतीजा मोहन लाल भी। गोविन्द, बसन्त राम और मोहन इस क्षेत्र से काफी वाकिफ हैं, क्योंकि ये सभी पीणी में अधिष्ठात्री देवी भगवती भागासिद्ध के सम्मान में मनाया जाने वाले उत्सव 'पिणी शाऊण' में माता की चाकरी के लिए प्रतिवर्ष आते हैं।

स्नेहा : इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य क्या था? (ट्रैकिंग, धार्मिक यात्रा, भ्रमण, शोध, प्रकृति अवलोकन आदि)
किशन : यात्रा का कोई विशेष उद्देश्य नहीं था। जैसा कि मैं पहले भी आपको बताया कि मैं यहां शादी समारोह में सम्मिलित हुआ था लेकिन मैं जहां भी जाता हूं तो मुझे वहां के क्षेत्र में बारे में जानने की जिज्ञासा हमेशा रहती है। इसी बहाने मैं गोविन्द और मोहन लाल के साथ पहले तो उस जगह को देखने निकला, जहां से अठारह करड़ओं ने दैविक कोठी 'गिरुआ कोठी' को उठा कर चंद्रखणी टॉप पर स्थापित किया था। स्थानीय मान्यता है कि जहां से देवगण गिरुआ कोठी को उठा कर ले गये थे, उसके अवशेष अभी भी वहां पर हैं। हमने दूर से उस स्थान को निहारा क्योंकि वहां आमजन को जाने की अनुमति नहीं हैं।

स्नेहा : यात्रा के दौरान आपको कौन–कौन से विशेष अनुभव हुए?
किशन : हालांकि मैं बचपन से अपनी रिश्तेदारी में जाने से या अन्य कारज़ों में शामिल हाने से दूर रहा हूं लेकिन जब मुझे पीणी गांव में जाने की सूचना प्राप्त हुई तो मैंने जाने के लिए हामी भरी। इस दौरान मुझे उस क्षेत्र में अपने रिश्तेदारों, सगी–सम्बंधियों से मिलने–जुलने का अवसर प्राप्त हुआ।

स्नेहा : क्या यात्रा के दौरान किसी स्थानीय व्यक्ति या चरवाहे आदि से बातचीत हुई? यदि हाँ, तो क्या जानकारी मिली?
किशन : जी हां! कार्यक्रम में से कुछ समय निकाल कर हम गांव की सैर करने गए थे तो गांव से बाहर एक बुजुर्ग से मुलाकात हुई। वह जंगल से लकड़ी लेकर आ रहे थे। वहां कालांतर एक काफी बड़ा भू–भाग खिसक के बिलकुल दरिया पर जाकर टिका है। हमने जब उनसे इस बारे पूछा तो उन्होंने उसके पीछे एक 'दैंत' यानि असुर की कथा सुनाई, जो काफी रोचक थी। जिस बारे कभी ओर दिन बातचीत हो सकती है। वैसे इस प्रकार की अन्य स्थानों पर भी भौगोलिक संरचनाएं बन जाती हैं कभी लैंडस्लाइड के कारण तो कभी हिमखण्ड के साथ भू–भाग के खिसकने के कारण। खेर! इस प्रकार की लोक–कथाएं और किंबदंतियों भी तो रोचक हैं।

स्नेहा : आपको यह संरचना पहली बार किस परिस्थिति में दिखाई दी?
किशन : स्तूप वाली संरचना तो ऊपर वाले कसलादी गांव के मंदिर में सुव्यवस्थित तरीके से रखी गई हैं।

स्नेहा : जब आपने इस संरचना को पहली बार देखा तो आपकी पहली प्रतिक्रिया या अनुभव क्या था?
किशन : जब मैंने पहली बार इन स्तूप आकार वाले शैल को देखा तो मेरा ध्यान एकदम से बौद्ध धर्म की

ओर गया। क्योंकि हम इतिहास में पढ़ते हैं कि सम्राट अशोक के समय में लोगों के बौद्ध धर्म को अपनाया था। जहां तक मुझे ज्ञात है उसे समय हिमाचल में भी इस धर्म का प्रचार–प्रसार था, लेकिन इतने दुर्गम क्षेत्र में भी बौद्धों का प्रभुत्व रहा हो, फिलहाल समझ नहीं पा रहा था। मैंने फिर विशेषज्ञों से इस बारे जानना चाह, जिसका मैं आगे बाचतीत में वर्णन करता रहूंगा। जी।

स्नेहा : आपको इसे देखकर ऐसा क्यों लगा कि यह बौद्ध स्तूप जैसी संरचना हो सकती है?
किशन : क्योंकि प्रथम दृष्टि में ये शैल स्तूपकार में दिखते हैं। स्तूप का सबंध सीधे बौद्ध धर्म से है।

स्नेहा : क्या इस स्थान तक पहुँचना कठिन था? यदि हाँ, तो किस प्रकार?
किशन : बिलकुल। पूरी पीणी फाठी, जिसमें अनेक गांव आते हैं, आज़ादी के छह–सात दशक बाद भी सड़क–मार्ग वंचित रही है। हालांकि हाल की के वर्षों में यहां सड़क पहुंच चुकी है, लेकिन इससे पूर्व यहां जाने के दो ही मार्ग थे– एक पार्वती घाटी से होकर सीधी चढ़ाई चढ़कर तो दूसरा जोत की तरफ से पहले चढ़ाई चढ़कर फिर उतराई उतर कर। यहां जाने से सौ बार सोचना पड़ता था। लेकिन अब परिस्थितियां बदल गयी हैं।

स्नेहा : क्या इस संरचना के आसपास अन्य समान संरचनाएँ भी दिखाई दीं?
किशन : जी। कसलादी की इस बड़ी सौह में इस प्रकार की एक नहीं बल्कि नौ–दस स्तूपनुमा शैल हैं।

स्नेहा : क्या इस यात्रा ने आपको इस क्षेत्र के इतिहास, संस्कृति या धर्म के बारे में सोचने के लिए प्रेरित किया?
किशन : जी। यहां की देव–संस्कृति जीवंत है। जैसे कि मैंने पूर्व में कहा कि यहां देवी भगवती भागसिद्ध का प्रमुख स्थान है। भागासिद्ध के सम्मान में यहां वर्षभर अनेक कार्यक्रम होते रहते हैं; जिसमें 'पीणी शाऊण' और 'छार दियाली' प्रमुख हैं। इसके अलावा यहां जौड़ा नारायण, जिसे लोग विष्णु का अवतार मानते हैं, के जन्मदिवस के अवसर पर फाल्गुन के महीने में उत्सव मनाते हैं, जिसमें अनेक परम्पराओं का निर्वहन किया जाता है।

स्नेहा : इस स्थान/संरचना को स्थानीय भाषा या बोली में क्या कहा जाता है?
किशन : स्थानीय निवासी धर्मचंद के अनुसार स्थानीय लोग इस संरचना को 'शैल' और 'भोट शैल' कहा जाता है। उनका कहना है कि ये चीनी भोटों द्वारा बनाए गए हैं और इस पर भोटी में लिखा गया है। लेकिन विशेषज्ञों का इसे लेकर अलग मत है।

स्नेहा : यह संरचना यहाँ कब से बनी हुई है, इसके बारे में स्थानीय लोग क्या बताते हैं?
किशन : बुजुर्गों से जब इस बारे पूछा गया तो उनका मानना है कि ये काफी समय से यहीं स्थापित हैं। इन संरचनाओं के निर्माण के कालखण्ड को लेकर विशेष ज्ञान नहीं मिल पाया। इनके यहां स्थापित होने को लेकर क्षेत्र में एक विशेष लोक–गाथा प्रचलित है–

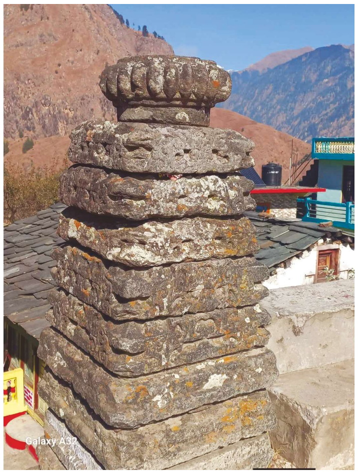

"ढेका कौछली, ढेका बाई...." यह एक देव भारथा का अंश भी है। इसके अनुसार ढेका मतलब पहाड़ के साथ बिलकुल सटी हुई ज़मीन। वहां पर एक पानी की बाबड़ी हुआ करती है। 'काउड़ी री बूढ़ी' यानि एक बूढ़ी और उस बाबड़ी में पानी भरने जाती थी तो उसे हर रोज 'सूने रा सील' यानि सोने के आकार का गेहूं का सील मिला करता था। वह बुढ़िया भी उन्हें अपने बक्से में रखती गई...रखती गई। एक दिन ऐसा आया कि वह सारा सोना विष में परिवर्तित हो गया। विष के प्रकोप से जनजीवन अस्त–व्यस्त हो गया था। तभी देवी भगवती भागसिद्ध के आदेश से जौड़ा नारायण की अगुवाई में कसलादी गांव की बड़ी सौह के बीचों बीच 10 गुणा 10 चौरस स्थान पर विष के इस बक्से को दबाया गया है और उसके ऊपर दो भोट–शैलों को स्थापित किया गया है। मान्यता है कि इस विष का प्रभाव अभी भी पूरी तरह से खत्म नहीं हुआ है, इसलिए फाल्गुन माह में जौड़ा नारायण देवते द्वारा यहां विशेष अनुष्ठान किया जाता है।

स्नेहा : क्या आपके पूर्वजों ने भी इस संरचना का उल्लेख किया है?
किशन : जी नहीं। हालांकि विष के बारे में तो हम बचपन से सुनते आए हैं कि 'पीणी में विष' है, लेकिन इन शेल आकृतियों के बारे में किसी ने कोई जिक्र नहीं किया।

स्नेहा : इस स्थान का गाँव के लोगों के लिए क्या महत्व है?
किशन : देखिए जी। हर स्थान विशेष का एक महत्त्व होता है। हिमाचल प्रदेश वैसे भी देवभूमि के नाम से विख्यात है। हर गांव में किसी न किया देवता का स्थान है और लोगों की आस्था अटूट है। आप स्वयं ही समझ सकते हैं।

स्नेहा : यह संरचना किस सामग्री से बनी हुई है? (पत्थर, मिट्टी, लकड़ी आदि)
किशन : यह पूरी तरह से पत्थर की हैं। जिस प्रकार बजौरा, नग्गर, बैजनाथ व अन्य स्थानों पर शिखर शैली के मंदिर है, ठीक यह संरचना भी उन्हीं से मेल खाती हैं।

स्नेहा : क्या इस प्रकार की और संरचनाएँ आसपास के क्षेत्रों में भी हैं?
किशन : जी बिलकुल। माता भागासिद्ध के गांव तलपीणी स्थित प्रमुख मंदिर में भी इस प्रकार की संरचानाएं स्थापित हैं। हालांकि इनके आकार में भिन्नता हो सकती हैं, लेकिन शैली में समानता है।

स्नेहा : क्या इन पर कोई प्रतीक, चिह्न, नक्काशी या लेखन मिलता है?
किशन : जी हां! इस शैल–स्तूपों पर कुरेद कर लिखा हुआ है। इस बारे में टांकरी के ज्ञाता यनित पंडित से जानकारी प्राप्त की तो उनका कहना है कि यह किसी लिपि से मेल नहीं खाती बल्कि इन शैलों पर सिर्फ डिज़ाइन के लिए नक्काशी की गई है। यतिन जी का मानना है कि इस तरह की शैल–संरचनाएं बोन धर्म, जो कि तिब्बत का सबसे प्राचीन मूल और स्वदेशी धर्म है। यह बौद्ध धर्म से भी हजारों वर्ष पुराना माना जाता है। आधुनिक समय में, यह धर्म तिब्बती बौद्ध धर्म और प्रकृति–आधारित मान्यताओं का एक अनूठा मिश्रण है जो अभी भी हिमालयी क्षेत्रों (तिब्बत, नेपाल, भारत) में प्रचलित है। उन्होंने बताया कि ये लगभग 5वीं शताब्दी के आसपास के बने हैं तथा इस तरह के शैल–स्तूप हिमालय के अन्य स्थानों पर भी हैं। जहां तक लिपि की बात है तो इन पर कुरेदी गई नक्काशी किसी भी लिपि से मेल नहीं खाती। ■

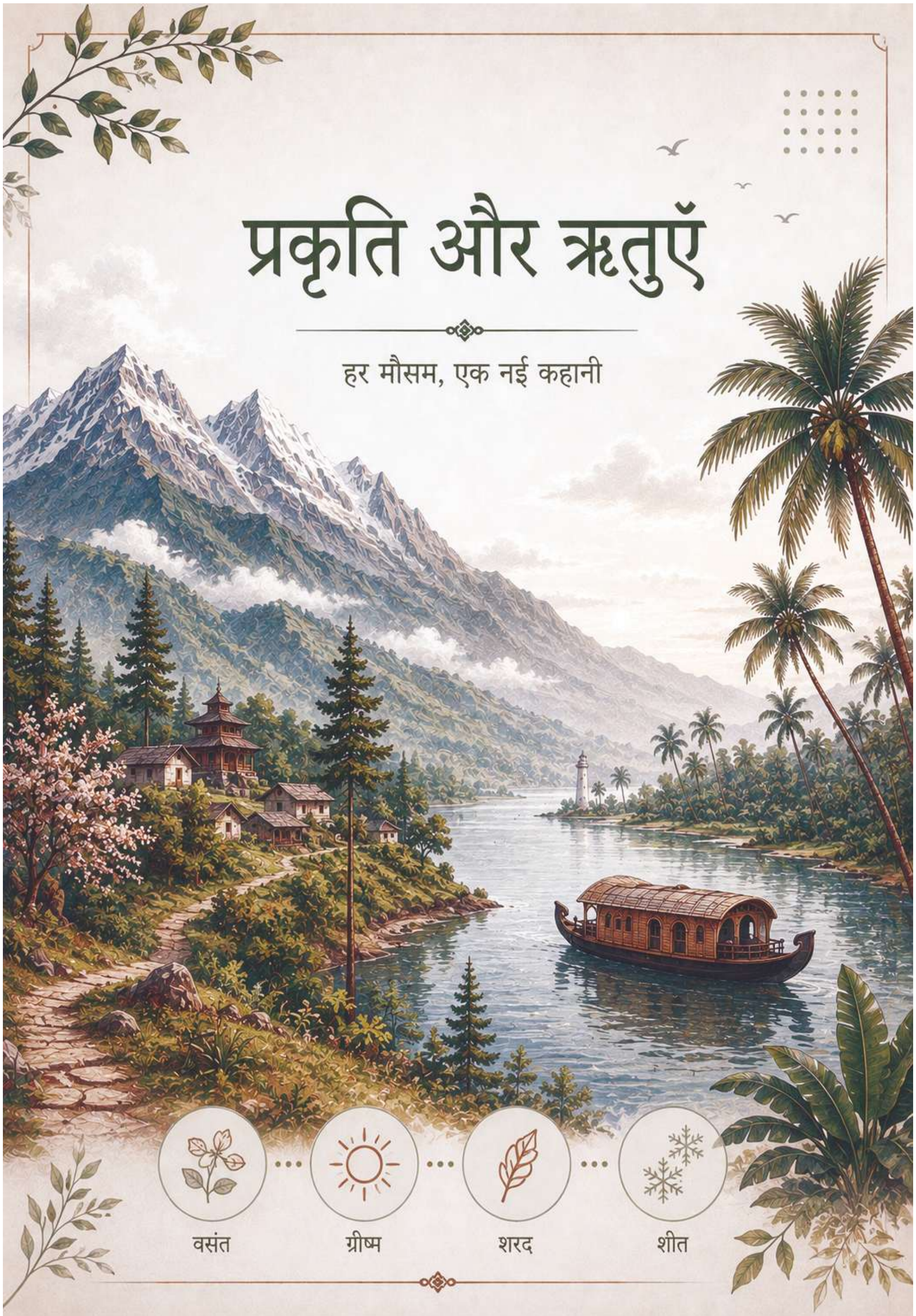
प्रकृति और ऋतुएँ
हर मौसम, एक नई कहानी
वसंत
ग्रीष्म
शरद
शीत

देवदार : हमारा साथी

शेर सिंह

परिचय : देवदार हमारे लिए सिर्फ एक पेड़ नहीं, बल्कि हमारे वातावरण और जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसके बीच में, मैं बचपन से बड़ा हुआ हूँ। देवदार हिमाचल प्रदेश का राज्य वृक्ष भी है। यह पहाड़ी क्षेत्रों में पाया जाने वाला एक शंकुधारी वृक्ष है, जिसकी शाखाओं पर सर्दियों में बर्फ जम जाती है, फिर भी यह मजबूत होकर खड़ा रहता है। बर्फ से ढके देवदार के वृक्षों का दृश्य अत्यंत आकर्षक और सुंदर होता है।

उपयोग :

1. मकान निर्माण में : देवदार की लकड़ी बहुत मजबूत होती है, जिसका उपयोग मकान की खिड़कियाँ, दरवाजे, फट्टे आदि बनाने में किया जाता है। छत बनाने के लिए भी इसकी लकड़ी का प्रयोग किया जाता है, है जिसे स्थानीय भाषा में "पछैणी" कहा जाता है। इससे मकान की छत लंबे समय तक टिकाऊ रहती है। हमारे घर के भी कई हिस्से देवदार की लकड़ी से बने हुए हैं।

2. धार्मिक मंदिरों के निर्माण में : हमारे गाँव में लगभग तीन मंदिर हैं, जिनका निर्माण देवदार की लकड़ी से किया गया है। मंदिर के ऊपरी भाग, जिसे स्थानीय भाषा में "करोष" कहा जाता है, उसकी पहले पूजा की जाती है, इसके बाद उसे स्लीपर की तरह काटकर गाँव के लोग मिलकर रस्सियों से बाँधकर उठाते हैं। उस पर देवता के कारदारों को बिठाया जाता है और पूरे गाजे–बाजे के साथ उसे मंदिर तक लाया जाता है। यह एक उत्सव जैसा होता है, जिसे देखने में सभी लोग आनंद लेते हैं।

3. धार्मिक पूजा में : देवदार की टहनियों का प्रयोग पहले धार्मिक स्थलों पर हवन के दौरान किया जाता था। इसे शुद्ध माना जाता था और अन्य सामग्रियों के साथ हवन में उपयोग किया जाता था।

4. दवाइयों में : देवदार से निकलने वाला चिपचिपा पदार्थ (छेलरा) भी उपयोगी होता है। इसे तेल में मिलाकर भेड़ों पर लगाया जाता था, जिससे उनमें कीड़े (जूँ आदि) नहीं पड़ते थे।

5. रोजगार में देवदार का पेड़ ग्रामीण लोगों के लिए रोजगार का साधन भी रहा है। लोग इसकी लकड़ी से खिड़कियाँ, दरवाजे, फट्टे और स्लीपर बनाकर बेचते थे, जिससे उनकी आजीविका चलती थी। लेकिन अधिक कटाई के कारण अब बड़े पेड़ों की संख्या कम हो गई है और छोटे पेड़ अब अधिक देखने को मिलते हैं।

पहले और अब का अंतर : पहले देवदार के बड़े और घने वृक्ष बहुत अधिक मात्रा में पाए जाते थे, लेकिन

 लगातार कटाई के कारण अब केवल छोटे और कम पेड़ ही बचे हैं। पहले इसका उपयोग पूजा, दवाइयों और निर्माण कार्यों में अधिक होता था,लेकिन समय के साथ इसका उपयोग सीमित हो गया है।

देवदार का संरक्षण : यह सारी जानकारी मुझे गाँव के 72 वर्षीय बुजुर्ग श्री गंगे राम जी से प्राप्त हुई हैं। उन्होंने बताया कि पहले गाँव के लोग जंगल की आग बुझाने के लिए सामूहिक रूप से कार्य करते थे। पेड़ों की कटाई पर रोक लगाई जाती थी और जंगल में बने जल स्रोतों का उपयोग आग बुझाने में किया जाता था। कभी–कभी जंगल जाने वाले रास्ते भी बंद कर दिए जाते थे ताकि जंगल सुरक्षित रह सके।

मेरा अनुभव : मेरा बचपन इन्हीं देवदार के वृक्षों के बीच बीता है। हम अपनी गायों को जंगल में चराने ले जाते थे, जो हमारे घर के पास ही था। मैं अपने भाई–बहनों के साथ पेड़ों पर झूलता था और मिट्टी के घर बनाता था, जिनकी छत के लिए देवदार की टहनियों का प्रयोग करते थे। दोपहर में हम इन पेड़ों की छाया में बैठकर बातें करते थे। कभी– कभी मैं पेड़ों पर चढ़ने की कोशिश करता था, लेकिन ऊपर तक नहीं पहुँच पाता था। ये सभी यादें आज भी मेरे मन में ताजा हैं, और यह पेड़ मेरे बचपन का हिस्सा रहे हैं।

निष्कर्ष : देवदार हमारे जीवन, संस्कृति और प्रकृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह हमें सुंदर वातावरण, उपयोगी लकड़ी और परंपराओं से जोड़ता है। इसलिए हमें देवदार के वृक्षों का संरक्षण करना चाहिए।

स्त्रोत व्यक्ति : श्री गंगे राम जी।

उम्र : 72 वर्ष

गाँव जलुईंड, कलवाटा (बालीचौकी) जिला मंडी

दिनांक : 28 मई 2026

पता : ग्राम जलुईंड, कलवाटा (बालीचौकी), जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश (175206)

केरल में मानसून

फ़रहाना फ़ातिमा

केरल में मानसून (Monsoon in Kerala) देश की कृषि, अर्थव्यवस्था और पारिस्थितिकी के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह राज्य की जलवायु को खुशनुमा बनाता है और जल स्तर को बढ़ाता है, लेकिन इसके साथ ही भारी वर्षा के कारण बाढ़ और जल-जनित बीमारियों जैसी गंभीर चुनौतियाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं।

केरल में मानसून के फायदे :

कृषि और अर्थव्यवस्था के लिए वरदान : मानसून केरल की कृषि, विशेष रूप से धान, नारियल, और मसालों की खेती के लिए जीवनदायिनी होता है। यह भूमि को उपजाऊ बनाता है और किसानों की आय का मुख्य आधार है।

पेयजल और जलविद्युत का स्रोत : केरल में अधिकांश जलविद्युत परियोजनाएं मानसून के पानी पर निर्भर करती हैं। बारिश का पानी राज्य के जलाशयों और भूजल स्तर (Groundwater) को फिर से भर देता है।

प्राकृतिक सौंदर्य : मानसून के दौरान केरल के जंगल, चाय के बागान और बैकवाटर (Backwaters) हरे-भरे और बेहद खूबसूरत हो जाते हैं। मुन्नार (Munnar) और वायनाड (Wayanad) जैसे पर्यटन स्थलों का नज़ारा देखने लायक होता है।

गर्मी से राहत : चिलचिलाती गर्मी और उमस के बाद मानसून की फुहारें लोगों और पर्यावरण को राहत और ताजगी देती हैं।

केरल के मानसून के नुकसान : 'बाढ़ और भूस्खलन' केरल के तटीय और पहाड़ी क्षेत्रों (विशेषकर पश्चिमी घाट के आसपास) में भारी बारिश के कारण अक्सर बाढ़ और भूस्खलन (Landslides) जैसी आपदाएं आती हैं, जिससे जन-धन का भारी नुकसान होता है।

स्वास्थ्य समस्याएं : अत्यधिक नमी और जलभराव के कारण डेंगू, मलेरिया, और वायरल बुखार जैसी बीमारियों का खतरा तेजी से बढ़ जाता है।

- जनजीवन और परिवहन में बाधा : मूसलाधार बारिश से सड़कों पर पानी भर जाता है, यातायात बाधित होता है और सामान्य जनजीवन प्रभावित हो जाता है।
- आर्थिक नुकसान : मछुआरों के लिए मानसून के दौरान समुद्र में जाना खतरनाक होता है, जिससे उनका रोजगार

अस्थायी रूप से रुक जाता है।

केरल में जून–जुलाई मानसून का मुख्य समय होता है। इस दौरान दक्षिण–पश्चिम मानसून पूरे राज्य में सक्रिय रहता है और लगभग रोज़ बारिश देखने को मिल सकती है।

जून में मौसम : जून की शुरुआत में ही मानसून केरल पहुँच जाता है। भारी बारिश, तेज़ हवा और बादल आम बात होती है। तापमान लगभग 23–30°C रहता है। पहाड़ी इलाकों जैसे Munnar और Wayanad में बहुत हरियाली और धुंध रहती है।

जुलाई में मौसम : जुलाई को केरल में 'पीक मानसून' माना जाता है। कई जगहों पर लगातार और भारी बारिश हो सकती है। नदियाँ और झरने भर जाते हैं, प्रकृति बेहद सुंदर दिखती है। कुछ पहाड़ी क्षेत्रों में भूस्खलन (landslide) की चेतावनी भी हो सकती है। समुद्र तटों पर ऊँची लहरें और यात्रा प्रतिबंध कभी–कभी लगते हैं।

निष्कर्ष : केरल में जून और जुलाई मानसून के सबसे महत्वपूर्ण महीने होते हैं। इस समय राज्य में अच्छी वर्षा, हरियाली और ठंडा मौसम देखने को मिलता है। जून में मानसून की शुरुआत होती है, जबकि जुलाई में वर्षा अपने चरम पर पहुँच जाती है। यह मौसम प्राकृतिक सौंदर्य और कृषि के लिए अत्यंत लाभकारी होता है,
लेकिन भारी बारिश के कारण बाढ़ और भूस्खलन जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए इस अवधि में सावधानी और मौसम संबंधी जानकारी पर ध्यान देना आवश्यक है।

दादी नानी के समय की जड़ी–बूटियों से जुड़ी जानकारी

राखी सोनी

प्रस्तावना : पुराने समय में पहाड़ी लोग अपना इलाज जड़ी–बूटियों से किया करते थे। उन्हें पहाड़ों में मिलने वाली औषधीय पौधों की अच्छी जानकारी होती थी। खाँसी, बुखार और चोट जैसी बीमारियों का इलाज प्राकृतिक तरीकों से किया जाता था। उस समय लोग प्रकृति पर अधिक निर्भर रहते थे। आज भी यह पारंपरिक ज्ञान पहाड़ी संस्कृति की एक महत्वपूर्ण पहचान माना जाता है।

पहाड़ों में पुराने समय में लोग बिना डॉक्टर के भी स्वस्थ जीवन जीते थे। वे छोटी–छोटी बीमारियों के लिए जड़ी–बूटियों और घरेलू नुस्खों का सहारा लेते थे। दादी–नानी द्वारा बताए गए ये देसी उपाय पीढ़ियों से चलते आ रहे थे। इससे लोगों का प्रकृति के प्रति विश्वास और जुड़ाव भी दिखाई देता है।

पुराने समय में उपयोग की जाने वाली जड़ी बूटियां :–

1. पठानवेग :– पठानवेग का दूसरा नाम पत्थरचटा है।

बनाने की विधि :– इसकी जड़ों को पत्थर पर रगड़कर लेप बनाया जाता है।

उपयोग करने की विधि :– इसे गाय की थन में जब खून और मवाद निकलता है उसके ऊपर इस लेप को लगा जाता है जिससे घाव जल्दी भर जाते है। माना जाता है कि इससे पथरी की समस्या से भी राहत मिलती है।

2. मक्की के बालों का काढ़ा :– बनाने की विधि :– मक्की के बालों को 1 गिलास पानी में सीधे डुबोया जाता है इसमें और कुछ भी नहीं डाला जाता है। इसे अच्छी तरह उबाल कर छान लिया जाता है और गुनगुने होने पर इसे पीया जाता है।

इसके फायदे :– ये औषधि पथरी, किडनी की समस्या, ब्लड प्रेशर और मोटापे के लिए फायदेमंद होती है।

3. शामल के कांटे :–

बनाने की विधि :– इसे कच्चे दूध के साथ पीसकर चेहरे पर लगाया जाता है।

उपयोग करने की विधि :– जिससे चेहरे पे होने वाले दाग–धब्बों से राहत मिलती है।

दादी मां की राय :– दादी मां बताती है कि वे ये कांटे एक विशाल पेड़ पर लगते हैं। जिसपर लाल रंग के फूल खिलते हैं, जिसे वे 'केके' के नाम से जानते थे। वे इन फूलों की सब्जी और आचार बनाकर खाते थे जो स्वाद में लाजवाब होते थे। ये सुनकर तो मेरे मुंह में पानी ही आ गया था ।

4. पीणी के पौधे :–

बनाने की विधि :– पहले इस पौधे को तोड़ कर साफ पानी से धोया जाता था, उसके बाद उसे प्लेन पत्थर जिसे पुराने समय में शिल्ह कहा जाता था। उसके ऊपर उसे अच्छे से पीसा जाता था। पीसने के बाद उसको मक्की के आटे में गुड़ को मिलाकर गूंथा जाता था, जिसकी रोटी बनाई जाती थी।

इस्तेमाल करने की विधि :– इस रोटी को उस व्यक्ति को खिलाया जाता था जिसे कुत्ते द्वारा काटा गया हो। इसे खाने से बहुत जल्दी आराम आता था।

मेरी मां का कहना : मेरी मां कहती है कि जब वे 6 या 7 साल की थी तब उनकी दादी ने उन्हें ये जानकारी दी थी।

5. उम्बली कुरी :–

बनाने की विधि :– उम्बली कुरी के पौधों की जड़ों को अच्छे से पीसकर लेप बनाया जाता था।

इस्तेमाल करने की विधि :– छोटे बच्चे को जब मुंह में फोड़े हो जाते थे, तब इस लेप को चेहरे लगाया जाता था जिससे जख्म जल्दी भर जात था और घाव में ठंडक मिलती थी।

मेरे पिता जी की राय : मेरे पिता जी मुझे बता रहे थे कि जब मुझे बचपन फोड़े हुए थे जिन्हें हम पहाड़ी भाषा में 'लूत' कहते हैं उन्होंने मुझे भी यही लेप लगाकर ठीक किया था और में जल्दी स्वस्थ हो गई थी।

6. शून्ढ :–

बनाने की विधि :– ये जड़ी–बूटी जंगली पेड़ों पर पाई जाती हैं। इसे अच्छी तरह सूखाने के बाद इसको पानी में अच्छी तरह 4 से 5 उबाल देने के बाद इसका काढ़ा बनाया जाता है।

इसके फायदे :– इस काढ़े को पीने से सर्दी और जुकाम तुरन्त ठीक हो जाता है।

दादी मां की बात : दादी मां बताती है कि जब मेरे पिता जी को सर्दी हो जाती थी तो वे पिता जी को यही काढ़ा पिलाया करती थी और इससे जल्दी असर हो जाता था।

7. कालेत्रा :–

बनाने की विधि :– कालेत्रा एक जंगली पौधा होता है जो जंगलों में घने कांटो में पाया जाता है। इसे अच्छे से पीसकर लेप बनाकर किसी चीज से कटने या चोट की जगह पे लगाया जाता है। जिससे घाव जल्दी भर जाता था।

8. खुरारू :–

बनाने की विधि :– खुरा एक ऐसी जड़ी बूटी है जो हमारे खेतो में ही पाई जाती है। जब गांव के लोग घास काटा करते थे को कई बार उस समय हाथ कट जाता था। जल्दी आराम पाने को उसे हाथ में ही मसल कर लेप बनाया जाता था।

फायदे :– इससे कटे हुए घाव से खून आना रुक जाता था, जिससे घाव में ठंडक पड़ जाती थी।

9. भूरश के कांटे :– बनाने की विधि :– ये जंगली पौधा होता है। इसमें गुलाबी रंग के फूल खिलते हैं। ये पौधा सिर से पैर तक पूरा कांटों से भरा हुआ रहता है। इसकी जड़े बहुत फायदे मंद होती है, जिसे सुखाने पर इसका पाउडर बनाए जाता था।

इस्तेमाल और फायदे :– इस पाउडर को सुबह खाली पेट गुनगुने पानी में मिलाकर पीया जाता था। यह महिलाओं में होने वाले सफेद पानी और बवासीर, शरीर में गर्मी काटने में फायदेमंद था।

दादी मां की बात : दादी मां बता रही थी कि उन्होंने ने भी और उनकी कई सहेलियों ने भी इसका सेवन किया है।

10. टिंबर के दाने :–

बनाने की विधि :– ये भी एक जंगली पौधा है जो आसानी से घरों के आसपास पाया जाता है। इस पौधे की बात की जाए तो ये पूरा के पूरा पौधा ही औषधीयों से भरा हुआ है। पुराने समय में लोग ब्रश नहीं इसी पौधों की दातून किया करते थे। मेरे घर में आज भी इसे से दातों साफ किया जाता है।

इस्तेमाल और फायदे :– पिता जी बताते है कि इससे मुंह के छालो और दांतों से जुड़ी समस्याओं का निवारण होता है।

आज मुझे पता चला :– आज मुझे ये समझ आया कि हम समय में कितने आगे आ चुके है, आगे निकलने की होड़ में हम अपनी ही संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। अगर में अपनी दादी, नानी, मां, पिता जी से बात नहीं करती तो शायद मुझे ये इन सब के बारे में पता नहीं चलता। मैंने सबकी बातों को बहुत ध्यान से सुना और मुझे बहुत सी चीजों का ज्ञान हुआ। साथ ही मेरी दादी, नानी भी बहुत खुश हुए कि मैंने उनके साथ समय बिताया और उनकी पुरानी यादों को ताजा किया।

निष्कर्ष : अंत में हम कह सकते हैं कि पुराने समय में पहाड़ी लोगों का जीवन प्रकृति से गहराई से जुड़ा हुआ था। वे जड़ी–बूटियों और घरेलू नुस्खों के माध्यम से अपना इलाज करते थे। यह ज्ञान उन्हें अपने बुजुर्गों से प्राप्त होता था और पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता रहा। जैसे मुझे आज मेरी दादी नानी से बात करके प्राप्त हुआ। पहाड़ी उपचार सस्ते और लाभकारी माने जाते थे। आज भी यह परंपरा पहाड़ी संस्कृति और पुराने ज्ञान की महत्वपूर्ण पहचान है। आज मैने यह जाना कि हर दर्द का इलाज हमारे आसपास ही है वो पैसे भी नहीं मांगता, वो मांगता है समय और थोड़ी सी मेहनत।

स्रोत :–

मेरी प्यारी दादी मां :– श्री मती कांता देवी।
मेरी मां :– श्री मती कृष्णा देवी।
मेरी पिता जी :– श्री तुले राम ।
गांव :– दोगाधार (बजौरा) जिला कुल्लू हिमाचल प्रदेश।
दिनांक :– 28–05–2026

– कला स्नातक, बी.ए. द्वितीय वर्ष
राजकीय महाविद्यालय पनारसा।

केरल में सर्दी : उत्तर भारतीय छात्रों के लिए एक अनोखा अनुभव

जौहर नौशाद

परिचय : प्रिय उत्तर भारतीय मित्रो! जब नवंबर से फरवरी के बीच उत्तर भारत कड़ाके की ठंड, घने कोहरे और ठंडी हवाओं की चपेट में होता है, तब भारत के दक्षिणी छोर पर स्थित 'ईश्वर के अपने देश' (God's Own Country) यानी केरल का नजारा बिल्कुल अलग होता है। उत्तर भारत के छात्रों के लिए केरल की सर्दी की कल्पना करना थोड़ा मुश्किल हो सकता है, क्योंकि यहाँ आपको भारी जैकेट, रजाई या हीटर की जरूरत नहीं पड़ती। केरल में सर्दी का मतलब है – एक बेहद सुहावना, सुखद और मनमोहक मौसम, जहाँ आप खुले आसमान के नीचे प्रकृति का पूरा आनंद ले सकते हैं।

केरल में सर्दी का मौसम कैसा होता है?

केरल की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि यह अरब सागर और पश्चिमी घाट के पहाड़ों के बीच बसा है। इसलिए यहाँ का तापमान सर्दियों में भी बहुत नीचे नहीं गिरता। मैदानी और तटीय इलाकों में तापमान आमतौर पर 20°C से 28°C के बीच रहता है। यहाँ दिन में गुनगुनी धूप खिली रहती है और सुबह–शाम ठंडी और ताजा हवाएँ चलती हैं। उत्तर भारत की तरह यहाँ हड्डियां कंपाने वाली ठंड नहीं होती, इसलिए यह मौसम घूमने–फिरने और बाहर समय बिताने के लिए बिल्कुल परफेक्ट माना जाता है।

पहाड़ी इलाकों का जादूरू मुन्नार और वायनाड (Hill Stations)

हालांकि मैदानी इलाकों में कड़ाके की ठंड नहीं होती, लेकिन अगर आप केरल के खूबसूरत हिल स्टेशनों जैसे मुन्नार, वायनाड या इडुक्की की ओर जाएँ, तो आपको असली सर्दी का एहसास होगा। वहाँ सुबह के समय चाय के हरे–भरे बागानों पर छाई सफेद धुंध (कोहरा) और पत्तियों पर ओस की बूंदें किसी स्वर्ग जैसी लगती हैं। सर्दियों में इन जगहों पर तापमान 10°C से 15°C तक जा सकता है। ऐसे में हल्का स्वेटर पहनकर, चाय के बागानों के बीच टहलना बहुत सुकून देता है।

सर्दियों में केरल का लजीज भोजन : जैसे उत्तर भारत में सर्दियों में मक्के की रोटी, सरसों का साग और गाजर का हलवा खाया जाता है, वैसे ही केरल में भी इस सुहावने मौसम का आनंद लेने के लिए कई खास पारंपरिक व्यंजन हैं :

– कप्पा और मीन करी : इस मौसम में यहाँ

'कप्पा' (Tapioca / एक प्रकार का कंद) और 'मीन करी' (मछली की मसालेदार सब्जी बहुत चाव से खाया जाता है। यह केरल का सबसे पसंदीदा भोजन है।

– अप्पम और स्टू (Appam & Stew) : सुबह के नाश्ते में गरम–गरम 'अप्पम' (चावल के आटे से बना जालीदार पैनकेक) के साथ सब्जियों या चिकन का 'स्टू' (हल्के मसालों और नारियल दूध वाली करी) खाया जाता है। यह पेट के लिए बहुत हल्का और स्वादिष्ट होता है।

– पुट्टू और कडाला करी (Puttu & Kadala Curry) : भाप में पका नारियल और चावल का 'पुट्टू' और उसके साथ काले चने की मसालेदार सब्जी सर्दियों में शरीर को गर्मी और ऊर्जा देते हैं।

– पझम पोरी और चाय (Pazham Pori & Tea) : शाम के समय ठंडी हवाओं के बीच मुन्नार की ताजा गरम चाय या फिल्टर कॉफी के साथ 'पझम पोरी' (केले के मीठे पकोड़े) खाने का आनंद ही कुछ और है।

सर्दियों के खास फल : केरल अपने ताजे और स्वादिष्ट फलों के लिए भी बहुत प्रसिद्ध है। सर्दियों के इस सुहावने मौसम में प्रकृति कई बेहतरीन फल उपहार में देती है–

– नेन्द्रन केला (Nendran Banana) : यह एक खास तरह का केला है जो आकार में बड़ा और स्वाद में बहुत मीठा होता है। इसी केले से मशहूर 'केरल चिप्स' भी बनाए जाते हैं।

– रसीले अनानास और पपीता (Pineapple & Papaya) : ताजे अनानास और पपीता इस मौसम में खूब मिलते हैं और सेहत के लिए बहुत अच्छे माने जाते हैं।

– कटहल (Jackfruit) : यद्यपि कटहल गर्मियों में ज्यादा मिलता है, लेकिन सर्दियों में भी यहाँ कटहल के कई रूप और इससे बने स्नैक्स उपलब्ध रहते हैं।

– ताजा नारियल (Tender Coconut) : सर्दी होने के बावजूद दिन की गुनगुनी धूप में यहाँ ताजा नारियल पानी पीना बहुत ताजगी भरा होता है।

पर्यटन के लिए सबसे अच्छा समय (Best Time to Visit) :

मानसून के बाद और सर्दियों की शुरुआत में केरल की हरियाली पूरी तरह निखर जाती है। चारों तरफ सिर्फ हरा रंग ही दिखाई देता है। यह अल्लेप्पी (Alleppey) के बैकवाटर्स (Backwaters) में हाउसबोट की सवारी करने, कोवलम और वर्कला जैसे समुद्र तटों (Beaches) पर टहलने और आयुर्वेद मसाज का आनंद लेने का सबसे अच्छा समय है।

निष्कर्ष : अंत में, यह कहा जा सकता है कि केरल की सर्दी आपको घर के अंदर रजाई में छिपने के लिए मजबूर नहीं करती, बल्कि यह आपको बाहर निकलकर प्रकृति की सुंदरता का आनंद लेने के लिए आमंत्रित करती है। यह मौसम सुहावना, स्वादिष्ट खाने से भरपूर और नई ऊर्जा देने वाला होता है। हम केरलवासियों की ओर से सभी उत्तर भारतीय छात्रों का स्वागत है कि आप कभी सर्दियों की छुट्टियों में यहाँ आएं और 'गॉड्स ओन कंट्री' की इस अनोखी, हल्की और प्यारी सर्दी का खुद अनुभव करें!

– निर्मला कॉलेज, केरल

कल्पवृक्ष नारियल : मेरा सच्चा साथी

फातिमा इरशाद

प्रस्तावना : केरल का नाम ही केरम (नारियल का पेड़) से बना है। ईराट्टुपेट्टा की पहाड़ियों और मोनावारी (Meenachil) नदी के आस-पास आपको हर तरफ नारियल के ऊंचे-ऊंचे पेड़ लहराते हुए दिखेंगे। हमारे यहाँ इसे कल्पवृक्ष कहा जाता है, यानी ऐसा पेड़ जो सब कुछ देता है। मेरे दादाजी ने मुझे इसके 5 सबसे महत्वपूर्ण उपयोग बताए जो हमारे दैनिक जीवन से जुड़े हैं।

नारियल के 5 मुख्य उपयोग (दादाजी और टीचर के अनुसार)

1. **पूजा और धार्मिक महत्व :** कोई भी शुभ काम हो, चाहे मंदिर का उत्सव हो या गृह प्रवेश, नारियल फोड़ना सबसे पहला कदम होता है। शादी के समय भी नारियल और उसके पत्तों का मंडप में विशेष महत्व होता है।

2. **रसोई की जान (भोजन) :** ईराट्टुपेट्टा की कोई भी सब्जी या करी नारियल के बिना अधूरी है। नारियल का तेल (Coconut Oil) हमारी मुख्य कुकिंग चॉइस है। चटनी से लेकर तोरन (Thoran) तक, हर चीज में कद्दूकस किया हुआ नारियल डाला जाता है।

3. **घर बनाने में (पारंपरिक वास्तुकला) :** दादाजी ने बताया कि पुराने समय में नारियल के पत्तों को सुखाकर और बुनकर घरों की छतें (Thatch) बनाई जाती थीं, जो गर्मियों में घर को बहुत ठंडा रखती थीं। इसकी लकड़ी से घरों के शहतीर बनते थे।

4. **घरेलू उद्योग (जटा और रस्सी) :** नारियल के छिलके (Husk) से 'कथरी' (Coir/रस्सी) बनाई जाती है। कोटायम जिले में कॉयर का बहुत बड़ा काम होता है। इससे चटाई, झाड़ू और गद्दे बनते हैं।

5 **पारंपरिक पेय और सेहत :** गर्मियों में जब धूप तेज होती है, तो इलानीर (Tender Coconut Water/नारियल पानी) सबसे अच्छा घरेलू इलाज है। यह पेट को ठंडक देता है।

निष्कर्ष : शिक्षक महोदय ने भी कक्षा में बताया था कि नारियल का पेड़ पर्यावरण को बचाने और मिटी के कटाव को रोकने में मदद करता है। मेरे घर के आंगन में लगा नारियल का पेड़ हमारे परिवार के एक सदस्य जैसा है।

स्थान : ईराट्टुपेट्टा, कोटायम (केरल)

सोर्स : दादाजी और कॉलेज के शिक्षक।

मौसम पेड़ और कहावतें

राखी सोनी

प्रस्तावना : हमारे पहाड़ी गांव में पहले लोग मौसम का हाल मोबाइल, टीवी, रेडियो से नहीं देखते थे। वे बादलों का रंग, हवा की चाल, पक्षियों की आवाज और प्रकृति के संकेत देखकर ही समझ जाते थे कि बारिश होगी या नहीं। मेरी नानी ने मुझे बताया कि ये कहावतें उन्हें उनकी मां यानी मेरी परनानी से सुनने को मिली थी। बाद में मेरी दादी मां भी यही बात हमें सुनाती थी।

ये कहावतें लगभग 1960– 75 के समय में गांव में बहुत बोली जाती थी। उस समय लोग खेती–बाड़ी और मौसम पर ही निर्भर रहते थे। इसलिए बारिश से जुड़ी हर छोटी बात को ध्यान से देखा जाता था। इन कहावतों में बुजुर्गों का अनुभव और पहाड़ी जीवन की सच्चाई छिपी हुई है।

दादी–नानी के समय की मौसम,पेड़ से जुड़ी कहावतें :–

1. 'आषाढ़ रे काले बादल, छेता रे भाग जांगल।'

अर्थ : मेरी परदादी कहती है कि अगर आषाढ़ महीने में पहाड़ों के ऊपर गहरे काले बादल दिखाई दें, तो अच्छी बारिश होती है और खेतों की फसल भी अच्छी होती है।

पुरानी यादें :– मेरी परदादी बताती हैं कि 1960–75 के आसपास गांव के लोग आसमान देखकर ही खेती का समय तय करते थे। जब पहाड़ों पर काल बादल दिखते थे, तो लोगों का कहना था कि– 'इस साल की मक्की खूब होगी।'

2. 'शाउन बॉरशु ता लोका हासदे।'

अर्थ : अगर सावन के महीने में अच्छी बारिश हो जाए, तो फसल अच्छी होती है।

दादी मां की बात :– मेरी दादी कहती है कि बारिश पहाड़ों की जान होती है। बारिश होने पर खेत हरे भरे हो जाते थे और लोग भगवान का धन्यवाद करते थे। दादी मां ने ये भी बताया कि वे अपनी सहेलियों के खेतो में भी काम करने जाती और उनकी सहेलियां भी उनके खेतों में काम करने आया करती थी जिसको वे लोग एक दूसरे की 'जुआरी' देना कहती थी।

3. 'जेठों री धाम, भद्रो रा पाणी।'

अर्थ : इस कहावत का मतलब है कि जेठ महीने की तेज गर्मी के बाद भाद्र में अच्छी बारिश होती

है।

नानी की याद : मेरी नानी ने बताया कि पहले लोग गर्मी देखकर ही बारिश का अनुमान लगा लेते थे। अगर गर्मी ज्यादा पड़ती थी, तो बुजुर्ग कहते थे – 'ऐसे बारी होना गाश जोरों रा।'

4. 'काले बादला पाणी दे, शुकी धरत राणी रे।'

अर्थ : काले बादल जब बारिश लाते हैं, तो सूखी धरती फिर से हरी–भरी हो जाती है।

पुरानी परम्परा :– मेरी दादी मां कहती हैं कि पहले बारिश शुरू होते ही बच्चे मिट्टी में खेलते थे। मेरी दादी मां बता रहे थे कि जब वो छोटी थी तब उनकी मां बारिश के मौसम में मक्की ओर सोयाबीन के दानों को भून कर खाया करती थीं जिसे खाते समय कड़ कड़ सी आवाज आती थी और उन्हें बहुत मजा आता था।

5. 'धारे रा बादल ता महानु रा मन, घड़ाघड़ीये जांदा बदल।'

अर्थ : पहाड़ों का मौसम और इंसान का मन कब बदल जाए, इसका पता नहीं चलता।

दादी मां का अनुभव :– मेरी दादी कहती थीं कि सुबह धूप होती थी और थोड़ी देर बाद तेज बारिश शुरू हो जाती थी। इसलिए उस समय के लोग अपने साथ ऊनी कपडे और छाता जरूर रखते थे।

6. 'गाशा घटी छेत शूने।'

अर्थ : अगर समय पर बारिश न हो तो खेत सूने–सूने और सूखे रह जाते थे।

गांव की सच्चाई :– मेरी नानी बताती हैं कि पहले के समय में खेती पूरी तरह बारिश पर निर्भर थीं। अगर बारिश समय पर नहीं होती थी, तो लोग बहुत चिंतित हो जाते थे क्योंकि उनकी फसल खराब होने का डर लगा रहता था।

मैंने सीखा : इन पुरानी कहावतों से मुझे सीखने को मिला कि हमारे बुजुर्ग प्रकृति को बहुत ध्यान से समझते थे। उनके पास आधुनिक साधन न होते हुए भी वे अपने सादे जीवन में खुश थे क्योंकि उनके पास अनुभव की कमी नहीं थी। वे मौसम को देखकर ही खेती ओर रोजमर्रा के काम तय करते थे।

मुझे अपनी दादी, नानी,परदादी से ये पुरानी बातें सुनकर बहुत बहुत अच्छा लगा। मुझे ऐसा लगा मानो जैसे पुराने समय का पहाड़ी जीवन मेरी आंखों के सामने आ गया हो। इन कहावतों में केवल शब्द नहीं बल्कि अनुभव, संस्कृति और प्रकृति का ज्ञान छिपा हुआ है।

निष्कर्ष : बारिश से जुड़ी पुरानी कहावतें हमारे गांव की अनमोल धरोहर हैं। ये कहावतें हमें प्रकृति से जुड़ना और बुजुर्गों के अनुभव का सम्मान करना सिखाती है। मेरी परदादी, दादी मां, और नानी द्वारा सुनाई गई ये कहावतें आज भी मोशन और खेती की सच्चाई को दर्शाती हैं।

इन कहावतों को सुनकर मुझे महसूस हुआ कि पुराने समय के लोग प्रकृति के बहुत करीब थे और उनका जीवन सरल,मेहनती और अनुभवों से भरा हुआ था।

स्रोत :– मेरी दादी मां– श्री मती कांता देवी

मेरी परदादी :– श्री मती खीमी देवी

मेरी नानीः– श्री मती गुड्डी देवी

गांव :– दोगाधार (बजोरा) जिला कुल्लू हिमाचल प्रदेश।

दिनांक :– 28–05–2026

राखी, कला स्नातक
बी.ए, द्वितीय वर्ष
राजकीय महाविद्यालय पनारसा

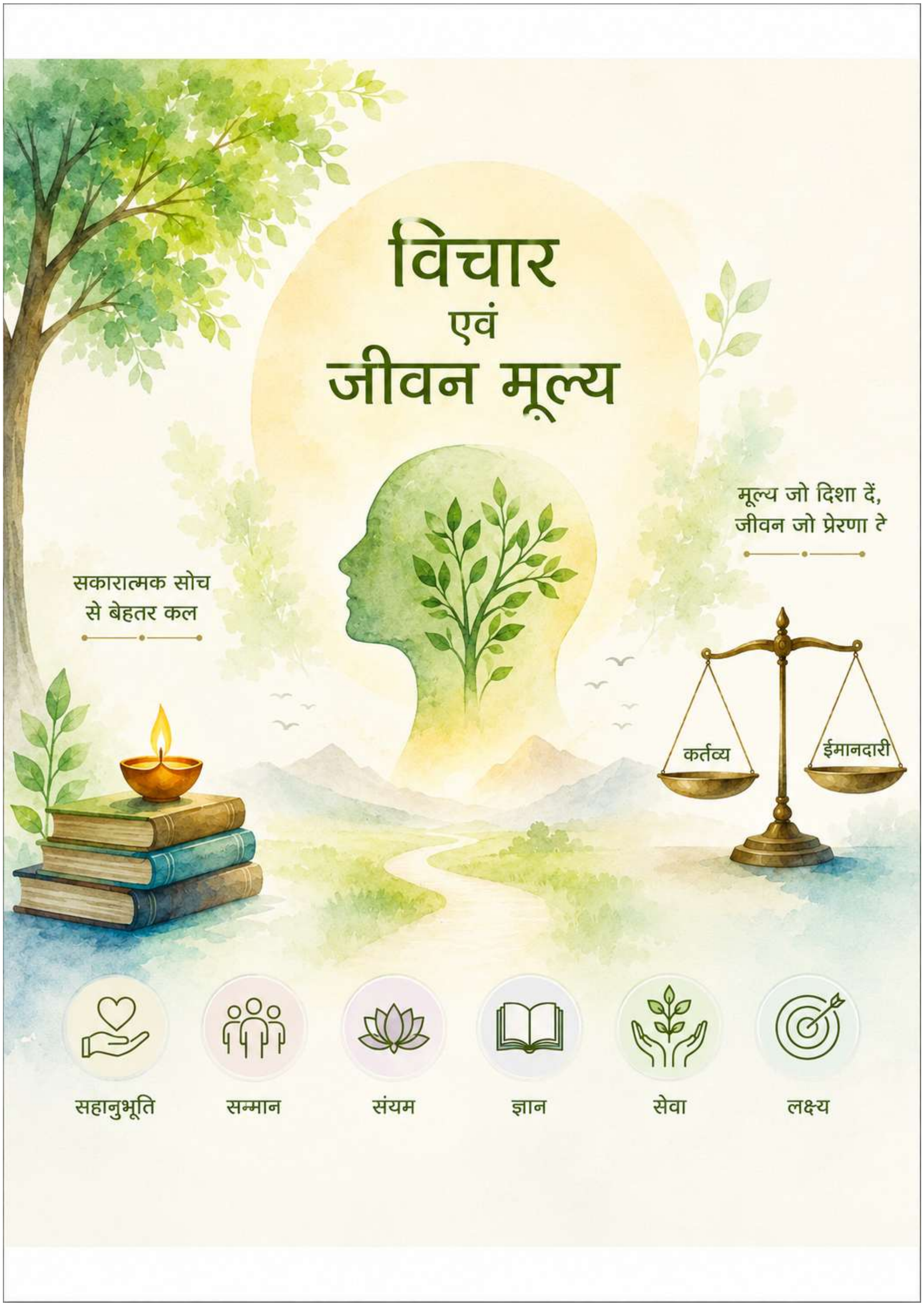

विचार
एवं
जीवन मूल्य
मूल्य जो दिशा दें,
जीवन जो प्रेरणा टे
सकारात्मक सोच
से बेहतर कल
कर्तव्य
ईमानदारी
सहानुभूति
सम्मान
संयम
ज्ञान
सेवा
लक्ष्य

शांति का मतलब

भावना विनोद

प्रस्तावना : एक शांतिपूर्ण अवस्था को शांति कहा जा सकता है।

- शांति का मतलब केवल शोर न होने की स्थिति-नहीं है ।

शांति के 2 प्रकार होती हैं :-

1. बाहरी शांति : जब झगड़ा न हो, युद्ध न हो, शोर-शराबा न हो। घर और समाज में सभी लोग प्रेम से रहें।
2. आंतरिक शांति : यही वास्तव में सबसे महत्वपूर्ण है। बाहर चाहे कितनी भी समस्याएँ हों, मन का विचलित न होना ही आंतरिक शांति है।

आंतरिक शांति का मतलब

1. बीती बातों के लिए अपराधबोध न होना

(मुझे उस दिन ऐसा नहीं करना चाहिए था- (सोचकर खुद को बार-बार दुख न देना।)

2. जो अभी नहीं हुआ, उसके लिए चिंता न करना। कल क्या होगा, इस डर में आज की नींद खराब न करना।
3. जो है, उसमें संतोष होना। दूसरों की कार, घर या नौकरी देखकर ईर्ष्या न करना, बल्कि यह महसूस करना कि (जो मुझे मिला है, वही मेरे लिए पर्याप्त है।
4. जो आपके नियंत्रण में नहीं है, उसे छोड़ देना दूसरे लोग क्या सोचेंगे, बारिश होगी या नहीं, परिणाम क्या आएगा - ये सब हमारे हाथ में नहीं है। इनके बारे में बेवजह चिंता करके समय बर्बाद न करना।

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं। (कर्म करो, फल की चिंता मत करो।

अपना कर्त्तव्य पूरी निष्ठा से निभाओ और परिणाम भगवान पर छोड़ दो। तब मन को शांति मिलेगी।

शांति पाने के लिए 3 छोटी बातें :-

1. रोज़ 5 मिनट शांत बैठो। न फोन, न टीवी। बस अपनी साँसों पर ध्यान दो।
2. कृतज्ञता व्यक्त करो। सोने से पहले आज की 3 अच्छी बातें याद करो। खाना मिला, मौसम अच्छा रहा, किसी ने मुस्कुराकर बात की। इतना ही काफी है।
3. क्षमा करना सीखो। जिन लोगों ने तुम्हें दुख पहुँचाया है, उन्हें मन से माफ कर दो। उनके लिए नहीं, अपनी शांति के लिए।

संक्षेप में : शांति का मतलब समस्याओं का न होना नहीं है। शांति का मतलब है समस्याओं के बीच भी मन का अडिग और शांत बने रहना। मेरे लिए शांति का मतलब क्या है? मेरे लिए शांति का मतलब दोस्तों के साथ समय बिताना है। अपने दोस्तों के साथ समय बिताना, बात करना, साथ में खाना खाना, मन की शांति बढाने के लिए एक महतवपूर्ण भूमिका निभाता है। मेरे घर में सबसे शांत व्यक्ति मेरी माँ है। वह बहुत धैर्य से किसी भी कठिन परिस्थिति को संभाल लेती है।

निष्कर्ष : शांति मन की एक अवस्था है जिसका हमारे पूरे शरीर पर प्रभाव पड़ता है। सच्चे मन और शांति का प्रभाव हमारे घर, समाज और चरित्र में भी अपने भूमिका निभाता है।

- निर्मला कॉलेज, केरल

मेरे लिए शांति का अर्थ और मेरे घर के सबसे शांत व्यक्ति

फातिमा इरशाद

प्रस्तावना : ईराट्टुपेट्टा एक ऐसा कस्बा है जो एक तरु पहाड़ों (वागामोन की पहाड़ियों के रास्ते) से घिरा है और यहाँ मीनाचिल नदी बहती है। प्रकृति के इस साये में रहते हुए शांति शब्द का मतलब बहुत गहरा हो जाता है। मेरे लिए शांति का मतलब कोई शोर-शराबा न होना नहीं है, बल्कि मन के अंदर का ठहराव है।

मेरे लिए शांति का क्या मतलब है?

एक विद्यार्थी के रूप में, जब मैं अपनी पढ़ाई के बाद शाम को मीनाचिल नदी के किनारे बैठती हूँ या अपने घर के आंगन में ठंडी हवा को महसूस करती हूँ, तो मुझे जो सुकून मिलता है, वही शांति है। मेरे लिए शांति का मतलब है :

- बिना किसी डर या चिंता के अपनी पढ़ाई और काम पर ध्यान दे पाना।
- परिवार के सभी लोगों का आपस में प्यार से रहना, जहाँ कोई मनमुटाव न हो।
- दूसरों की मदद करके मन को मिलने वाली संतुष्टि।
- हमारे घर का सबसे शांत व्यक्ति

जब मैंने सोचा कि हमारे घर में सबसे शांत कौन रहता है, तो मेरी नजर सीधे अपनी माँ (या पापा, आप बदल सकते हैं, पर गई। हमारे घर में दो बच्चे हैं (जैसा कि आप स्वयं दो बच्चों की माँ हैं, आप इसे अपने नजरिए से या अपनी माँ के नजरिए से लिख सकते हैं। यहाँ मैं आपकी माँ के संदर्भ में लिख रहा हूँ):

मेरी माँ घर में सबसे शांत रहती हैं। चाहे हम बच्चे कितना भी शोर मचाएं, या घर में कोई भी काम का तनाव हो, माँ कभी अपना आपा नहीं खोतीं। वे बहुत धैर्य से हर परिस्थिति को संभाल लेती हैं। जब मैंने उनसे पूछा कि आप इतनी शांत कैसे रह लेती हैं, तो उन्होंने मुझे डायरी में लिखने के लिए ये दो लाइनें खुद बोलकर लिखवाईं :

''जब बाहर बहुत शोर और परेशानियाँ हों, तो अपनी आँखें बंद करो और ईश्वर को याद करो। गुस्सा करने से चीजें बिगड़ती हैं, शांत रहकर सोचने से हर मुश्किल का हल मिल जाता है।''

निष्कर्ष : इस शोध से मुझे समझ आया कि शांति बाजार में नहीं मिलती, यह हमारे घर के बड़ों के व्यवहार में और हमारे अपने भीतर होती है। माँ से सीखी यह बात मुझे जीवन भर काम आएगी।

स्थान : ईराट्टुपेट्टा, कोट्टायम

सोर्स : स्वयं के विचार और पिता जी/माता जी से बातचीत

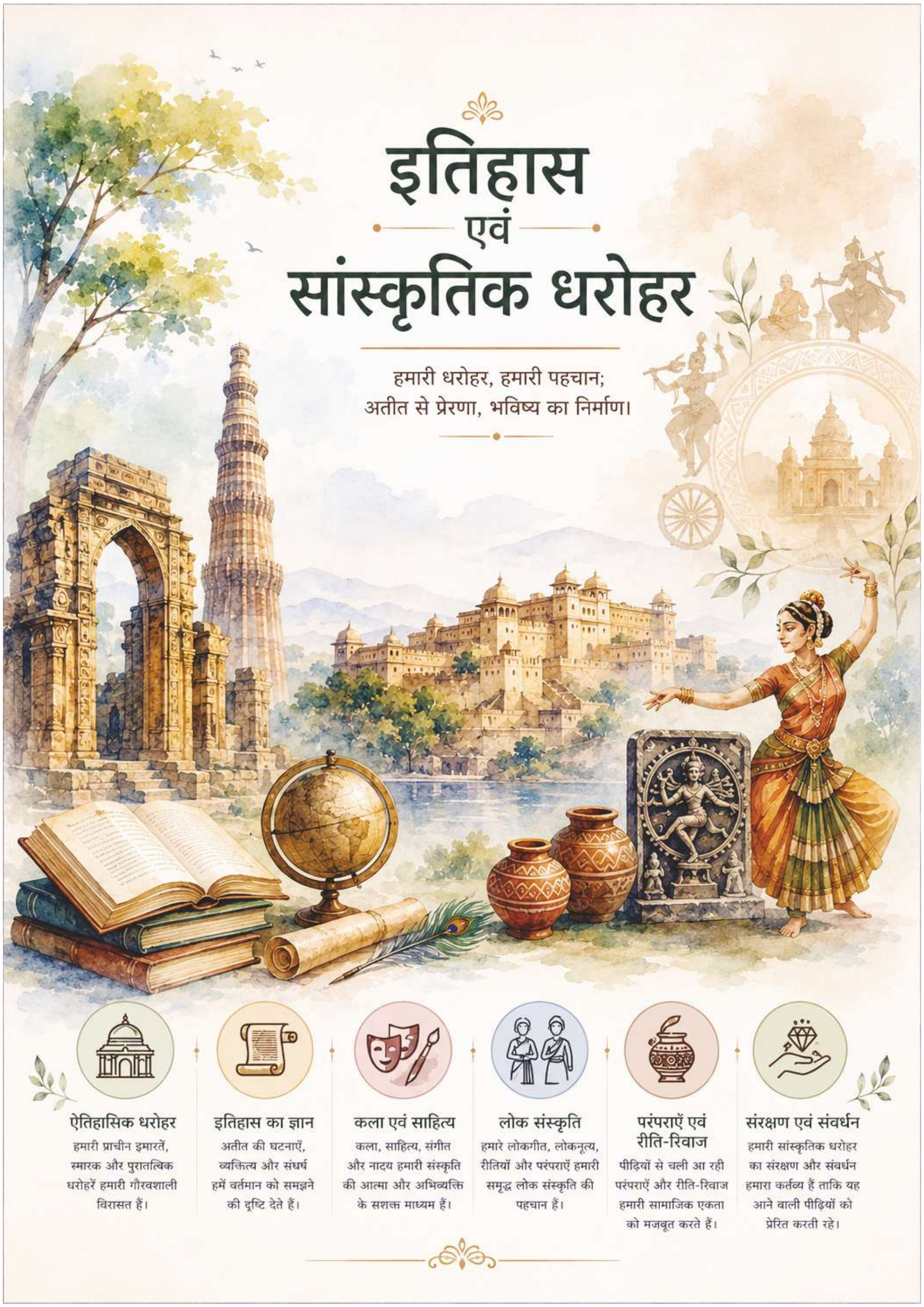
इतिहास
एवं
सांस्कृतिक धरोहर
हमारी धरोहर, हमारी पहचान;
अतीत से प्रेरणा, भविष्य का निर्माण।
ऐतिहासिक धरोहर
हमारी प्राचीन इमारतें, स्मारक और पुरातत्विक धरोहरें हमारी गौरवशाली विरासत हैं।
इतिहास का ज्ञान
अतीत की घटनाएँ, व्यक्तित्व और संघर्ष हमें वर्तमान को समझने की दृष्टि देते हैं।
कला एवं साहित्य
कला, साहित्य, संगीत और नाट्य हमारी संस्कृति की आत्मा और अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम हैं।
लोक संस्कृति
हमारे लोकगीत, लोकनृत्य, रीतियाँ और परंपराएँ हमारी समृद्ध लोक संस्कृति की पहचान हैं।
परंपराएँ एवं रीति-रिवाज
पीढ़ियों से चली आ रही परंपराएँ और रीति-रिवाज हमारी सामाजिक एकता को मजबूत करते हैं।
संरक्षण एवं संवर्धन
हमारी सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण और संवर्धन हमारा कर्तव्य है ताकि यह आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित करती रहे।

मेरे गाँव : तीन नदियों की संगम कथा : मुवट्टुपुजा

प्रविता. वी

हमारे मुवट्टुपुजा का नाम सुनते ही कानों में एक मीठी सी गूंज पैदा होती है। यह नाम कोई आज का नहीं, बल्कि सैकड़ों साल पुराना है। मैंने जब यह कहानी अपने दादा जी और गाँव के उन बुजुर्गों से सुनी, तो रूह कांप उठी। वो कहते थे– " मुवट्टुपुजा का मतलब है 'तीन नदियों का संगम'।" संस्कृत और मलयालम के शब्दों से मिलकर बना है यह नाम। 'मुवट्टु' यानी तीन, और 'पुजा' यानी नदी।

जब देवी–देवता भी धरती पर विचरा करते थे, उस समय यहाँ की तीन नदियाँ– तोड्डुपुझा, कलीयार और कोथामंगलम पुझा– अलग–अलग बहती थीं। एक दिन ऋषि–मुनियों की तपस्या से प्रसन्न होकर प्रकृति माँ ने तय किया कि ये तीनों बहनें एक स्थान पर मिलेंगी। आज जहाँ पर पुराना पुल बना है, उसी जगह पर ये तीनों धाराएँ आपस में गले मिलती हैं। इसीलिए उस गाँव का नाम पड़ा 'तीन नदियों का घर' यानी मुवट्टुपुजा।

वो कहते थे कि पुराने समय में यहाँ एक राजा रहता था। राजा को सपना हुआ कि यहाँ तीन नदियों के मिलन बिंदु पर शिवलिंग स्थापित करो। जैसे ही खुदाई की गई, तीन धाराओं के बीच एक अद्भुत स्वयंभू शिवलिंग मिला। तब से उस जगह का 'तीन मुंह वाली नदी' कहा गया। धीरे–धीरे 'मुवट्टुपुजा' नाक सबके मुंह पर आ गया।

अंग्रेजों के जमाने में भी इस नाम की गरिमा बरकरार थी। अंग्रेज इसे 'मुवट्टुपुजा' ही बुलाते थे क्योंकि यहाँ तीन नदियाँ मिलती हैं। उसी पहचान पर यह शहर बसा। एक और दिलचस्प बात– यहाँ का मशहूर घोड़ा नदी पुल (Muvattupuzha Bridge) पूरे एशिया में अपनी तरह का पहला 'कंक्रीट का पुल' था। जब इस पुल को बनाया गया, तो पता चला कि वास्तव में तीन नदियाँ एक जगह पर त्रिकोण बनाकर मिल रही हैं। कहते हैं इंजीनियरों ने भी कहा– "ये जगह धरती का अनोखा चमत्कार है।"

आज मुवट्टुपुजा एक शहर जरूर बन गया है, लेकिन हमारे लिए अब भी वही पुराना गाँव है। जब भी पुराने पुल पर खड़े होकर नीचे तीन नदियों को मिलते देखता हूँ, तो लगता है मानो सारी कहानियाँ आँखों के सामने जीवंत हो उठती हैं। यह नाम सिर्फ भौगोलिक स्थिति नहीं बताता, बल्कि हमारी संस्कृति, हमारे अस्तित्व और एकता की सीख देता है।

इसलिए जब भी कोई पूछे– 'तुम कहाँ से हो?' तो सीना तान कर कहना– 'हम मुवट्टुपुजा वाले हैं। जहाँ तीन नदियाँ गले मिलती हैं, वहीं हमारा दिल भी तीनों दुनियाओं के लिए खुला है।'

– निर्मला कॉलेज, केरल

मेरे गाँव बाड़ी का इतिहास

कुमकुम

मेरा गाँव बाड़ी, जिला मंडी के पंडोह क्षेत्र में स्थित है। मेरा गाँव एक छोटा–सा और सुंदर गाँव है। यहाँ पर सीमित संख्या में लोग रहते हैं, न तो बहुत अधिक और न ही बहुत कम। यह गाँव प्राकृतिक सुंदरता, उपजाऊ भूमि और शांत वातावरण के लिए जाना जाता है। अपने गाँव के इतिहास के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए मैंने अपने घर के बुजुर्गों से बातचीत की। उनसे मुझे गाँव के बारे में कई रोचक बातें जानने को मिलीं।

बुजुर्गों ने बताया कि हमारे पूर्वज मूल रूप से मंडी क्षेत्र के किसी अन्य स्थान पर रहते थे। वहाँ रहने के बावजूद उन्हें मनचाहा सुख और शांति प्राप्त नहीं हुई। बेहतर जीवन और शांत वातावरण की तलाश में वे विभिन्न स्थानों पर जाते रहे। अंततः वे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ आज हमारा गाँव बाड़ी स्थित है।

बुजुर्गों के अनुसार, पहले इस क्षेत्र को 'जंगलवाड़ी' के नाम से भी जाना जाता था। इसका मुख्य कारण यह था कि यहाँ चारों ओर घना जंगल फैला हुआ था। उस समय इस स्थान पर बहुत कम लोग रहते थे और अधिकांश क्षेत्र पेड़ों तथा वनस्पतियों से ढका हुआ था। ऊँचे–ऊँचे पेड़, झाड़ियाँ और प्राकृतिक हरियाली इस क्षेत्र की पहचान थे।

जब हमारे पूर्वज यहाँ आए, तब उन्होंने इस स्थान को रहने योग्य बनाने का निश्चय किया। उन्होंने कठिन परिश्रम करके जंगल के कुछ भाग को साफ किया। रहने के लिए घर बनाए गए और खेती के लिए भूमि तैयार की गई। यह कार्य आसान नहीं था। उस समय आधुनिक मशीनें नहीं थीं, इसलिए अधिकांश काम हाथों से ही किए जाते थे। फिर भी हमारे पूर्वजों ने अपने परिश्रम और धैर्य से इस स्थान को एक सुंदर गाँव का रूप दिया।

धीरे–धीरे यहाँ परिवार बसने लगे और गाँव का विकास होने लगा। लोगों ने खेती को अपनी आजीविका का मुख्य साधन बनाया। यहाँ की भूमि उपजाऊ थी, इसलिए फसलें अच्छी होने लगीं। गेहूँ, मक्का, धान तथा अन्य कृषि उत्पादों की खेती की जाने लगी। खेती के साथ–साथ लोगों ने पशुपालन भी शुरू किया, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हुई।

मेरे गाँव की सबसे बड़ी विशेषता इसकी प्राकृतिक सुंदरता और शांत वातावरण है। आज भी यहाँ चारों ओर हरियाली दिखाई देती है। यद्यपि समय के साथ गाँव का विकास हुआ है, फिर भी प्रकृति

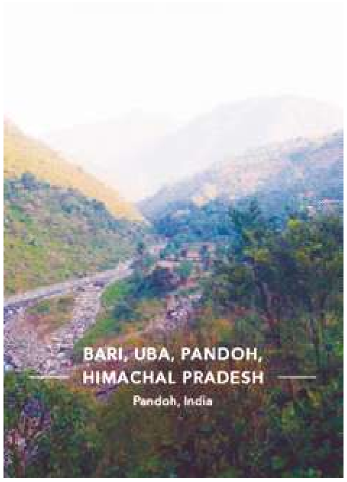

से इसका गहरा संबंध बना हुआ है। गाँव के लोग प्रकृति का सम्मान करते हैं और अपनी परंपराओं को संजोकर रखते हैं।

गाँव में आपसी भाईचारा और सहयोग की भावना भी देखने को मिलती है। लोग एक–दूसरे के सुख–दुख में साथ खड़े रहते हैं। त्योहारों और सामाजिक कार्यक्रमों को सभी मिलकर मनाते हैं। यही एकता हमारे गाँव की सबसे बड़ी ताकत है।

अपने बुजुर्गों से बातचीत करके मुझे यह समझने का अवसर मिला कि हमारे गाँव का निर्माण कितने संघर्ष और परिश्रम से हुआ है। यदि हमारे पूर्वज साहस और मेहनत न करते, तो शायद यह स्थान आज इतना विकसित न होता। हमें उनके कार्यों और योगदान का सम्मान करना चाहिए तथा अपने गाँव की संस्कृति, इतिहास और प्राकृतिक धरोहर को सुरक्षित रखने का प्रयास करना चाहिए।

"झोल"

इस प्रकार, बाड़ी गाँव केवल एक रहने का स्थान नहीं है, बल्कि हमारे पूर्वजों की मेहनत, संघर्ष और सपनों का प्रतीक है।

बुजुर्गों से प्राप्त जानकारी के आधार पर पुराने समय के खान–पान का वर्णन

जब मैंने अपने घर के बुजुर्गों से बातचीत की, तो उन्होंने मुझे पुराने समय के खान–पान के बारे में कई रोचक बातें बताईं। उन्होंने बताया कि उस समय लोगों का भोजन आज के समय के भोजन से काफी अलग होता था। अधिकांश खाद्य पदार्थ घर पर ही तैयार किए जाते थे और लोग हमेशा प्राकृतिक तथा पौष्टिक भोजन का सेवन करते थे।

सुबह के समय वे लस्सी में नमक मिलाकर पीते थे जिसे वे नीदुउ कहते थे तथा अपनी गायों का ताजा दूध भी पीते थे। उस समय लगभग हर परिवार के पास गाय–भैंस होती थी, इसलिए दूध की कोई कमी नहीं होती थी। दिन के भोजन में वे कोदरे (कोदो) के आटे को लस्सी में घोलकर पकाते थे जिसे वे ष झोल ष कहते थे । उसे पहले अच्छी तरह उबाला जाता था और फिर ठंडा करके पिया जाता था। यह भोजन पौष्टिक होने के साथ–साथ गर्मियों में शरीर को ठंडक भी प्रदान करता था।

"कोदरे की रोटी"

शाम के समय वे 'साग–सब्जी' और रोटी खाते थे। रोटियों में मक्के की रोटी, कोदरे की रोटी तथा चिल्लड़े जैसे पारंपरिक व्यंजन शामिल होते थे चिलड़ा बनाने के लिए आटे में पानी मिलाकर पतला घोल तैयार किया जाता है। इसके बाद तवे पर थोड़ा तेल लगाया जाता है और उस घोल को गोल आकार में पतली परत के रूप में फैलाया जाता है। पकने के बाद यह एक स्वादिष्ट व्यंजन बन जाता है, जिसे हिमाचली भाषा में शचिल्डाश

कहा जाता है। पुराने समय में यह व्यंजन लोगों के भोजन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हुआ करता था।। इन खाद्य पदार्थों को वे दूध के साथ भी खाते थे।

"कच्चे आलू की कचौड़ी"

बुजुर्गों ने बताया कि उस समय गाँवों में संसाधन सीमित होते थे। कई बार सब्जी या अन्य खाद्य सामग्री उपलब्ध नहीं होती थी, तब लोग रोटी के साथ हर नमक (नमक, पुदीना और मीर्च पीसकर) पीसकर खाते थे और उसी से अपना भोजन पूरा करते थे। मेरे बुजुर्गों ने मुझे पुराने समय के खान–पान के बारे में कई रोचक बातें बताई। उन्होंने विशेष रूप से एक पारंपरिक व्यंजन के बारे में बताया, जिसे वे 'कच्चे आलू की कचौड़ी' कहते थे। यह आज के परांठों से कुछ भिन्न होती थी। जिस प्रकार आज हम परांठों में उबले हुए आल या गोभी की फिलिंग भरते हैं, उसी प्रकार उस समय लोग कच्चे आलू को कद्दूकस करके उसमें नमक और मसाले मिलाते थे तथ उसे आटे की लोई के अंदर भरकर बेलते थे। इसके बाद उसे तवे पर सेंककर या घी के साथ पकाकर खाया जाता था। यह व्यंजन स्वादिष्ट होने के साथ–साथ पौष्टिक भी माना जाता था और ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों द्वारा बड़े चाव से खाया जाता था।

"पत्रोड़ू"

उन्होंने मुझे एक और पारंपरिक व्यंजन के बारे में बताया, जिसे 'पैत्रोड़ू' कहा जाता है। यह व्यंजन अरबी के पत्तों से बनाया जाता है और ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत लोकप्रिय रहा है। इसे बनाने के लिए सबसे पहले अरबी के पत्तों को अच्छी तरह साफ किया जाता है। इसके बाद उन पर बेसन, नमक, मिर्च तथा अन्य मसालों का लेप लगाया जाता है। फिर पत्तों को मोड़कर या रोल बनाकर उबाला जाता है। जब यह अच्छी तरह पक जाते हैं, तब इन्हें छोटे–छोटे टुकड़ों में काटा जाता है। इसके बाद इन टुकड़ों को तेल में हल्का तला जाता है, जिससे इनका स्वाद और भी बढ़ जाता है। मेरे बुजुर्गों ने बताया कि यह व्यंजन बहुत स्वादिष्ट होता है और इसे रोटी के साथ बड़े चाव से खाया जाता है। पुराने समय में यह घरों में अक्सर बनाया जाता था और परिवार के सभी सदस्य इसे पसंद करते थे।

इस प्रकार, पुराने समय का खान–पान सादा, पौष्टिक और प्राकृतिक था। लोग अपने खेतों और पशुओं पर निर्भर रहते थे तथा उपलब्ध संसाधनों से ही संतुलित भोजन तैयार करते थे। इससे उनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता था और वे मेहनती जीवन व्यतीत करते थे।

गाँव से जुड़ी एक लोककथा

मेरे गाँव से संबंधित कोई विशेष ऐतिहासिक कहानी तो नहीं है, लेकिन मेरे बुजुर्गों ने मुझे एक रोचक कथा सुनाई। यह कथा मेरे दादाजी से जुड़ी हुई है। मेरे दादाजी बहुत धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। वे देवी–देवताओं में गहरी आस्था रखते थे तथा अपने सदाचार, ज्ञान और धार्मिक विचारों के लिए जाने जाते

थे। बुजुर्गों के अनुसार, जब हमारा परिवार अपने पुराने निवास स्थान से यहाँ आकर बसा, तब परिवार की इष्ट कुलदेवी वहीं रह गई थीं। किसी कारणवश उन्हें नए स्थान पर स्थापित नहीं किया जा सका। इसके बाद दादाजी को बार–बार सपने आने लगे उस सपने में एक कन्या उनके सामने आकर कहती थी, 'तुम मुझे भूल गए हो।' यह सपना उन्हें कई दिनों तक लगातार आता रहा, जिसके कारण वे चिंतित हो गए। बाद में जब उन्होंने इस विषय में जानकारी प्राप्त की, तब उन्हें पता चला कि उनकी इष्ट कुलदेवी पुराने स्थान पर ही रह गई हैं।। जब उन्होंने इस विषय में एक विद्वान और धार्मिक व्यक्ति से सलाह ली, तो उस व्यक्ति ने बताया कि उनकी कुलदेवी पुराने स्थान पर ही रह गई हैं और उन्हें नए निवास स्थान पर लाना आवश्यक है।

यह सुनकर दादाजी नंगे पाँव पुराने स्थान तक गए और पूरी श्रद्धा एवं विधि–विधान के साथ कुलदेवी को अपने नए गाँव में लेकर आए। बुजुर्गों का मानना है कि इसके बाद परिवार में सुख, शांति और समृद्धि आने लगी तथा जो कठिनाइयाँ थीं, वे धीरे–धीरे दूर हो गईं।

मेरे बुजुर्गों के अनुसार, मेरे दादाजी के पास कुछ पारंपरिक धार्मिक और लोक–विद्याओं का ज्ञान था। उस समय गाँव के लोग मानते थे कि यदि किसी व्यक्ति को भूत–प्रेत, बुरी शक्तियों या अन्य ऐसी समस्याओं का प्रभाव हो, तो दादाजी अपनी विधाओं और धार्मिक अनुष्ठानों के माध्यम से उसकी सहायता कर सकते थे। लोग अपनी परेशानियाँ लेकर उनके पास आते थे और उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करते थे।

बुजुर्ग बताते हैं कि दादाजी अपने ज्ञान का उपयोग केवल लोगों की भलाई के लिए करते थे। उनके पास ऐसी विद्याएँ होने के बावजूद उन्होंने कभी किसी का अहित नहीं किया। वे हमेशा लोगों के दुःख दूर करने, उनका मनोबल बढ़ाने और उन्हें सही मार्ग दिखाने का प्रयास करते थे। इसी कारण गाँव और आसपास के क्षेत्रों में उनका बहुत सम्मान था और लोग उन पर गहरा विश्वास रखते थे।

यह कहानी मुझे अपने बुजुर्गों से सुनने को मिली। यह कथा हमारे परिवार की धार्मिक आस्था, कुलदेवी के प्रति श्रद्धा और पारंपरिक मान्यताओं को दर्शाती है। साथ ही यह हमें अपने रीति–रिवाजों, संस्कृति और पूर्वजों की मान्यताओं का सम्मान करने की प्रेरणा भी देती है।

इस प्रकार, अपने बुजुर्गों से बातचीत करके मुझे अपने गाँव के इतिहास, संस्कृति, परंपराओं, खान–पान, रहन–सहन तथा गाँव से जुड़ी लोककथाओं के बारे में बहुत सी महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त हुईं। इन बातों से मुझे यह समझने का अवसर मिला कि समय के साथ हमारे गाँव में अनेक परिवर्तन आए हैं, लेकिन आज भी लोग अपनी संस्कृति और परंपराओं से जुड़े हुए हैं। बुजुर्गों द्वारा सुनाई गई बातें और लोककथाएँ हमारे पूर्वजों के अनुभव, विश्वास और जीवन–मूल्यों को दर्शाती हैं। इस बातचीत के माध्यम से मुझे अपने गाँव और अपनी सांस्कृतिक विरासत को और अधिक निकटता से जानने का अवसर मिला, जिस पर मुझे गर्व है। साथ ही, इससे मुझे अपने बुजुर्गों के अनुभवों और ज्ञान का महत्व भी समझ में आया।

– राजकीय महाविद्यालय, पनारसा,
ज़िला मण्डी, हि.प्र.।

THE ASHES OF TEARS

"Greed is a mouth without a throat: it swallows but cannot carry,"

Anna Carson

Narrator : Smoky sky, hazy vision, and rotten wood, ashy tears – this is the new world. At last, humanity declared victory in its long war against the trees. Every forest had fallen; every root had burnt from the face of the earth. Humans had cut down the trees of the entire world—yet still their hunger for more could not be satisfied—wood to burn,

wood to carve, more proof of their dominance. Now there was nothing left to feed their greed.

They tried to create artificial wood, but no machine, no genius, no metal or chemical could imitate what nature can do. The world grew colder and emptier, stripped of its green soul. They thought this was the end, but maybe the devil's work was not done. Humans began to find new ways to acquire trees and wood.

Then, unexpectedly, their satellites revealed something extraordinary: an unknown island hidden deep within the ocean, untouched by human civilization. An island overflowing with oxygen and it has a dense forest. Moreover, with that exact moment, their greed possessed them, and humanity declared a new war—their final war "against the last living sanctuary of the earth.

Characters

- **Garudan (Protagonist) :** The wisest and oldest tree on the island, and stands at the pinnacle of all tree species.
- **Rudra :** A calm, disciplined, and Responsible one (Garudan's son).
- **Arunima :** A good mother with Loves without limits, and a good wife, and she's Rudra's wife.
- **Chandra :** Responsible, emotionally supportive, and caring (Rudra's younger son).
- **Kalynda :** Brave, Trustworthy, and a bit Naïve (Rudra's older daughter).
- **Akhilesh :** Talkative, narcissistic, and still a Trustworthy boy (Chandra's friend).
- **General Niccolo Machiavelli (Antagonist) :** Selfish, manipulative, evil, and greedy. An evil general, who represents humans.

<u>ACT 1</u>

- **Garudan :** Ahhh, what a lovely morning this is. The morning sound of birds chirping is mesmerizing, and the cold ocean winds always remind me of my younger days, when I was a small tree dreaming of growing tall and majestic, just like my father.
- **Akhilesh :** Shut up, you old-timer. Every darn morning, you say exactly those words. What a lovely morning this is, what a lovely sound of chirping birds, bla bla bla. Aren't you tired of your same blabberish?
- **Garudan :** Haa haa haa, good morning, little Akhilesh, or I say tiny Akhilesh. How is your morning going? I hope it's as bright as ever. Haa Haa Haa,
- **Akhilesh :** Hey, I am not tiny, you old geezer, and don't ignore my question. I asked you something.
- **Arunima :** Stop you two, and dad, stop teasing Akhilesh, and you, Akhilesh, it's not the right way to talk to elders. Don't you think you should give them respect? In addition, he's the oldest and most respected tree on the whole island, or maybe in the whole world, so start respecting him or else…

Akhilesh : Okay, okay, Miss Arunima!!

- **Arunima :** Hmm… good boy.

Chandra : Good morning, Grandfather.

Garudan : Very good morning, little Chandra.

- **Akhilesh :** I don't get what his obsession with this word "little" is. Little that, little what.

- **Arunima :** Akhilesh!
- **Akhilesh :** Sorry, sorry.
- **Kalynda :** Good morning, big pops.
- **Garudan :** Good morning, Princess Kalynda.
- **Akhilesh :** (giving side eyes)
- **Rudra :** Hey Dad! good morning.
- **Garudan :** Good morning, son. How is your morning? Feeling good? Last night was quite terrifying for you, yeah. The wind was quite strong.

Rudra : Yeah Dad, last night was quite tough. However, with your help, I managed to survive last night. Still, my back is killing me. My branches are all torn up from the back.

- **Garudan :** Don't worry, son, they will grow back, but for now, take some rest.
- **Akhilesh :** It means I am stronger than Uncle Rudra.
- **Chandra :** How?
- **Akhilesh :** Look at me. There isn't a single scratch on me. And my branches are also safe. I am so cool and awesome.
- **Garudan :** Or maybe you are just a dumb tree. Look at you, you little twig. You're just the size of an acorn or a little bush; you are so little. Even the wind can't reach you.
- **Akhilesh :** You giant piece of...
- **Arunima :** Akhilesh! Say sorry.
- **Akhilesh :** But he started it.
- **Arunima :** (looking coldly at Akhilesh)
- **Akhilesh :** Okay, sorry.
- **Kalynda :** Step aside, Akhilesh. Let me talk to Grandfather. Every day Father used to tell stories to us, but now father is resting, so can you please tell a story? Because I am bored with Chandra and Akhilesh's childish behavior.
- **Akhilesh :** Heyyy, that hurts.
- **Kalynda :** whatever
- **Akhilesh :** No wonder Ryan left you, ha ha ha.
- **Kalynda :** You bald demon, you just crossed the line.
- **Chandra :** Shut up, both of you.
- **Chandra :** So, can you tell us a story, please, grandfather?
- **Garudan :** Okay, okay, I will.

ACT 2

- **Garudan :** It was when I was very young and curious, always dreaming about what was beyond the sea. At that time, this island had only a few trees. The land was quiet and almost empty. However, one day, a couple of strange, ape-like beings arrived from the sea. They walked on two legs just like an ape, and they stayed here for some time. They enjoyed the island and beaches, and after some days they planted various types of trees; and do you know, Akhilesh… your grandfather also came with them from another land and settled here. That was when I realised that those ape-like persons were kind and good-hearted. They brought us new friends, and because of them, our forest grew, but…
- **Akhilesh :** But what, old man?

- Garudan : But it has been ages since they have visited us; maybe they forgot about us.
- Akhilesh : Booo! What a lame story.
- Kalynda : Is that true, pops? Have some Ape-like people visited us from beyond the sea?
- Akhilesh : Do you really believe in the old man's story? Kalynda, do you actually believe that there are ape like people out there on the other side of the sea, and if there are, wouldn't they have found us by now, or just visited us?
- Chandra : Yes, Kalynda, Akhilesh has a point. Just think, do you actually believe there is someone out there? Anyway… we don't care about them.
- Kalynda : But…
- Akhilesh : There is no but; it's just a silly story, Kalynda. Accept it.
- Arunima : Akhilesh, stop teasing Kalynda.
- Kalynda : Even if it's just a story, I trust my pops.
- Garudan : Haa, haa haa, think whatever your heart desires, children, but it is the truth and a wonderful memory. I wish one day they come, before, I leave this Garden of Eden.

ACT 3

- Narrator : As Garudan ended his story, a strange vibration crept through the roots of the island. Far beyond the horizon, where the ocean met the sky, they saw a black, shadow-like structure cutting through the water. The wind carried a foreign scent, sharp and burning, unlike anything the island had ever known. Unknown to the trees, human vessels had already entered the surrounding seas.

Among the humans was a name spoken in hushed fear even by his own kind—General Niccolo Machiavelli. He was not a man driven by survival or need, but by the hunger of victory and massacring. Loss was something he could not tolerate, and mercy was a concept long buried beneath ambition. His purpose was singular and absolute: to destroy the island, strip it of every living tree, and claim it as another victory carved into history.

- Arunima : Dad, what is this black shadow-like structure at the end of the horizon? I can't see it properly.
- Akhilesh : Maybe it's a bird.
- Kalynda : stupid, a bird can't be that big, and look, the distance dumbo, maybe it's a pack of birds.
- Garudan : Yes, yes, finally they came, for all this time I thought maybe it was just a dream, but now I know it was not, they finally came to see us, Kalynda, are you seeing this?
- Kalynda : Yes, pops,I'am looking, but are you sure it's the same people you have told about us?
- Garudan : Yes, my child, I'm sure that's them. When I was young, they had the same kind of thing that they used for sailing on the seas, but this time it's quite big. Maybe they came with more trees to plant.
- Akhilesh : I don't know, it smells like trouble for us.
- Chandra : Yeah, I am getting this weird vibe, too, guys. Something is fishy.

- **Garudan :** Don't worry, children, they are not gonna harm you.
- **Arunima :** Hope so, Dad.

ACT 4

Narrator : General Niccolo Machiavelli stepped onto the island's soil. He did not pause to admire the towering trees or the endless green stretching before him. To him, it was not beauty, it was territory yet to be claimed. Around him, soldiers straightened instantly. Engineers hurried forward. Scouts scattered into formation. No words were needed. A simple gesture of his hand sent units marching into the forest. Heavy machines followed, their blades unfolding like metallic jaws.

But Garudan and his family are still unaware of how much trouble they are in.

- **Akhilesh :** Look, old man, they brought something with them, but I don't know what is it; it looks like the chainsaw shark nose or something.
- **Kalynda :** You were right, pops. There are people on the other side of the sea, and they finally found us again. I'm so happy, and I'm glad you toldus that story. Pops, you just made my day.
- **Chandra :** I can't believe my eyes! What I am seeing is true or not? Maybe I am dreaming, please somebody pinch me.
- **Kalynda :** Okay (sound of slap)
- **Chandra :** Hey, why did you slap me? I said pinch me, not slap me.
- **Akhilesh :** Shut up, both of you. Look, they are doing something.
- **Garudan :** They are setting up their tents, but I don't see any trees with them, maybe they forgot. Maybe they are in such a rush that they forget to bring out the trees from the sailing shadow (ship).
- **Akhilesh :** I don't think so, I can sense trouble, old man.
- **Garudan :** You worry too much, Akhilesh. Just relax and enjoy the show.
- **Arunima :** Alright, alright, enough for today. Now you all go to sleep.
- **Akhilesh :** yeah I am going to sleep. I'm tired of this.

NEXT MORNING

- **Akhilesh :** What is this annoying sound at this godly hour? Stop shouting, Kalynda I am too young for this crap. Please let me sleep in peace.
- **Chandra :** Open your eyes, Akhilesh, open your eyes.

ACT 5

THE LAST DAY OF JUDGEMENT

- **Akhilesh :** (slowly opening his eyes) No, no, no, no, no, no, no, what's going on? What happened? Why are they killing us? Chandra, Chandra, can you hear me? Chandra, answer me… and where is Kalynda? I can't see uncle Rudra and aunt Arunima anywhere.
- **Chandra :** They all were killed by these humans. They cut all the trees and are still cutting them.
- **Akhilesh :** We're all going to die…(pain and fear in his voice)

Narrator : As the humans start cutting trees, the sounds get louder and louder. The screams of trees, the sound of the ripping fresh is just mesmerising as a melodious song sang by a godly maiden, for ordinary people this sounds like a psychopath, but for General Machiavelli it's a blessing sent by the gods.

As they are trying to kill Chandra and Akhilesh, Garudan is shouting, begging for mercy, but the humans can't hear him. However, suddenly a golden light struck Garudan from the sky, and at that moment, humans started understanding Garudan, the language of trees.

Garudan : stop, stop, please stop. Have mercy, spare my children. Please kill me instead, but please spare my boys.

- General : Look what we have here, a talking tree, It's a long time since anybody surprised me, boy.

- Garudan : Please spare my children, and I beg you, please end this monstrosity.

- General : (a low, controlled laugh) Ends, you want to make me end this? Are you out of your mind? Look around you, oh wait, I didn't catch your name, where did my manners go, so, what is your name?

- Garudan : (a low voice) Garudan.

- General : Garudan aaa!, what a lovely name you have, and what is the name of these two young ones?

Garudan : On your right is Chandra, my grandson, and on your left is Akhilesh, who's Chandra's best friend.

General : lovely, so let me introduce myself, my name is Niccolo Machiavelli, and for now, that's all you need to know. So where was I? Aaaa! I remember I was saying, "Look around you, Garudan, I'm winning, and I am having fun, and you're ruining my fun. Garudan, so you know what I'm gonna do. I'm gonna start with Akhilesh. A slow agonising death. Not with axes or chainsaws—those are too quick and less painful. I will erase him in front of you, piece by piece, until nothing remains but silence. After that, we have Chandra. For him, I won't rush. I'm gonna use my favorite blade straight from Japan, I will give him a painful death, this blade is gonna cut him bit by bit. Each moment chosen. Each cut is measured. You will stand. You will watch. And you will scream, and then the forest finally understands despair and…"

- Garudan : Are you gonna kill me?

- General : (bursts in a loud laugh) You think I'm gonna kill you? No no no… Sorry my friend. Death is not for you. No fun killing you right here, no, no, no. You will die every single day, every single moment by remembering this harsh reality that you were not able to save your family, and do you know what's gonna happen… your boy Akhilesh's face will show up half burned up, saying save me, save me Garudan… Save me, and when you walk up from this horrifying dream, suddenly you will see me cutting your grandson. Oh man I'm gonna cherish this moment.

- Garudan : (crying out loud) Please don't do this. Have some mercy, we didn't do anything to you, so why are you punishing us? Please have mercy on us, please I beg you.

- General : See Garudan,I don't care because *veni vidi vici (*I came, I saw, I conquered).

- Narrator : At last, humans destroyed the last garden of Eden, the last hope. I'm gonna say humans are the worst thing that was ever created by god

- Ashutosh, Govt. College Panarsa

PROJECT REPORT

Tradition or Modernity: Which Is More Relevant to Today's Youth?

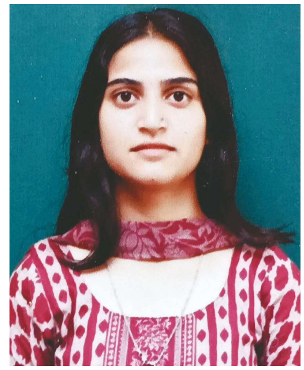

Sakshi

PREFACE

This project, titled "Tradition and Modernity: Which Are Youth Closer To-", examines how today's youth balance traditional values with modern ideas. Based on interviews with students, the study shows that young people adopt a practical approach, choosing what suits them best in different situations. The findings underscore a synthesis of respect for tradition and receptivity to modernity.

ACKNOWLEDGMENT

I extend my sincere gratitude to Dr Leena Vaidya for her valuable guidance, encouragement, and continuous support throughout this survey project. Her insightful suggestions played a significant role in shaping the study effectively.

I am also thankful to all the respondents who participated in the survey and shared their honest views, which formed the foundation of this analysis.

Lastly, I express my heartfelt gratitude to my family and well-wishers for their constant support and motivation during the completion of this project.

ABSTRACT

This study explores the views of the younger generation toward traditional values and modern thinking through survey and interview-based methods. The findings reveal that most youth follow a balanced approach, selecting elements of both tradition and modernity according to situational ideas.

INTRODUCTION

The survey titled "Tradition and Modernity among Youth" aims to explore how today's young generation balances cultural traditions with modern ideas in their everyday lives. Traditions are the customs, beliefs, practices, and values passed down from one generation to another. They shape a society's identity and help individuals stay connected to their cultural roots.

On the other hand, modernity refers to the adoption of new ideas, scientific thinking, technological advancements, and progressive attitudes that promote change and development in society. It reflects openness to innovation, equality, and rational thinking.

Conducted through interview-based responses and surveys, this study highlights the changing mindset of youth and their practical approach toward values, beliefs, and

lifestyle choices. Rather than strictly following one path, the survey reveals that young people thoughtfully combine tradition and modernity according to different situations.

FINDINGS AND DISCUSSION

1. Balance between Tradition and Modernity

The survey indicates that most young people do not consider tradition and modernity as opposing forces. Instead, they attempt to create a balance between the two in their daily lives. Their approach depends largely on circumstances and practicality.

Vedika explains that she prefers selecting those elements from tradition and modernity that are meaningful in a particular situation. She believes that not everything old should be rejected, nor should everything modern be blindly accepted. Similarly, **Vipin Thakur** states that tradition connects him to his cultural roots and family values, while modernity provides him with independence and Confidence. From these responses, it becomes clear that youth adopt a flexible and practical outlook, integrating both ideologies to maintain harmony between cultural identity and personal growth.

2. Cultural Values, Marriage, and Social Customs

Family traditions, marriage rituals, and social customs remain important aspects of youth life. However, young people today approach these traditions with awareness and reasoning rather than blind acceptance.

Reena believes that marriage rituals are meaningful because they preserve cultural heritage and strengthen family bonds. However, she also emphasises that such rituals should be practised with understanding and consent. **Giriraj** adds that traditional customs provide moral guidance and social stability. On the other hand, **Akhilesh Paul** highlights that important life decisions, including marriage, should be based on logic and mutual understanding rather than societal pressure. These viewpoints show that youth respect traditions, but at the same time, prioritise rational thinking in personal and social matters.

3. Clothing, Behaviour, and Language

Clothing, behaviour, and language reflect how youth adjust themselves in different social settings. The responses show that young people are highly adaptable and capable of maintaining both traditional and modern identities depending on the context.

Vedika mentions that she prefers traditional attire during festivals and family gatherings as a way of respecting cultural norms. However, in college and at social events, she chooses modern clothing for comfort and confidence.

Similarly, **Ravi** explains that he modifies his language and behaviour according to the environment. He speaks Pahari at home to stay connected to his roots, while using Hindi in college for better communication. These responses highlight the flexibility of youth in preserving their cultural identity while comfortably participating in modern social spaces.

4. Belief Systems and Problem-Solving

The study reveals that while dealing with challenges or problems, youth tend to adopt a rational and scientific approach. They prefer logical reasoning rather than relying on blind beliefs or superstitions.

Vedika emphasises the importance of positive attitude and practical solutions in overcoming difficulties. **Ravi** clearly states that associating problems with superstitions is inappropriate and unproductive. **Vipin Thakur** agrees that scientific thinking helps solve practical issues, though he also acknowledges that certain emotional or spiritual aspects of life may not always be explained scientifically. This indicates that youth value rationality and critical thinking while still respecting emotional and cultural dimensions of life.

5. Modernity, Freedom, and Independence

Modernity is strongly associated with freedom of thought and independence among youth. Many respondents view modern thinking as a means to express themselves and make informed decisions.

Giri Raj Rana explains that modernity allows individuals to voice their opinions openly but he also warns against the excessive and irresponsible use of technology.

Dhmeshshri believes that modern education and awareness help young people become responsible decision-makers. **Sneha** adds that a balanced combination of tradition and modernity gives her a deeper meaning and stability.

These viewpoints suggest that youth does not perceive modernity and tradition as opposing forces, but as an opportunity for growth and self-development.

6. Social Media: Positive and Negative Aspects

Social media plays a significant role in shaping the lives of contemporary youth. The responses show that young people are aware of its advantages and disadvantages. Vedika believes that social media helps individuals stay connected, gain information, and express their ideas freely. However, she also stresses the importance of responsible usage. Sneha points out that while social media can be educational and informative, it can also lead to distraction, misinformation, and unnecessary peer pressure, if misused. This demonstrates that the youth understands the dual impact of social media and recognise the need for balance and self control.

7. Overall Interpretation

The overall findings indicate that today's youth are thoughtful, analytical, and adaptable. They neither blindly follow tradition nor completely reject it. Instead, they critically evaluate both traditional and modern values before adopting them. By respecting cultural values and embracing progress and rationality, youth create a balanced identity that allows them to move forward confidently without losing their heritage. This balanced outlook reflects maturity and awareness in dealing with the complexities of contemporary society.

METHODOLOGY

The present study is based on the survey method. The data was collected from 7 students through structured questionnaires and interview-based responses. The respondents were asked questions related to their views on tradition, modernity, cultural practices, belief systems, social media, and lifestyle choices. A simple random sampling method was used to select the participants. The responses were recorded carefully and analysed to identify common patterns, similarities, and differences in viewpoints.This methodology helped in understanding how youth perceive and balance tradition and modernity in their daily lives.

CONCLUSION

The interviews conducted for the survey clearly indicate that today's youth follow a balanced and thoughtful approach toward tradition and modernity. The respondents do not completely accept or reject either perspective; instead, they adopt what is meaningful and practical according to different situations. Traditions are respected for their cultural value, emotional strength, and sense of identity, while modern ideas are welcomed for promoting independence, logical thinking, and personal growth.

The interviews reveal that students are adaptable in their lifestyle choices, including clothing, language, behaviour, and decision-making. They value traditional customs but strongly oppose blind beliefs and social pressure. Logical reasoning, scientific thinking, and personal understanding play an important role in their problem-solving and life decisions. At the same time, the influence of family and society is acknowledged but is not allowed to override individual values.

Overall, the survey shows that contemporary youth are aware, analytical, and progressive. By respecting their cultural roots while embracing modern thinking, they create a balanced outlook that helps them lead meaningful and responsible lives in a changing society.

APPENDIX :

Questionnaire

Personl Information

1. What is your category- (Student/ Teacher/ Non teaching staff/ Class-IV employee/ Other)
2. What is your age group- (Below 18 / 18-21 / 22-25 /Above 25)
3. What is your gender- (Male/ Female/ Other) Tradition and Modernity
4. What does tradition mean to you?
5. What does modernity represent in your life?
6. Which do you feel closer to: Tradition, Modernity, or Both equally?
7. Do you believe tradition and modernity can coexist?

Daily Life and Lifestyle

8. Your preference in clothing depends on: Tradition/ Modern fashion/ Situation and occasion.
9. Language used by you in daily life: Mother tongue at home/ Hindi/English outside/ Both depending on situation
10. Do you change your behaviour according to different social environments-

Beliefs, Family, and Society

11. Do you think traditions should be followed blindly?

12. What influences your major life decisions the most- (Family/ Society/ Personal thinking
and logic/ Combination)

13. What is your approach to problem-solving?

Faith and belief/ Logic and science/ Both Modernity and Social Media

14. Does modern thinking promote independence among youth?

15. Impact of social media on youth is: Positive / Negative/Depends on usage?

Open-Ended Questions

16. How do you balance tradition and modernity in your daily life?

17. In your opinion, which is more important, tradition or modernity, for today's youth and why?

Consent

All the participants willingly agreed to take part in this survey. They have no objection to their names being printed in the project report. They also permitted the use of photographs taken with them strictly for academic and educational purposes.

Primary Sources

Dhmeshri. Interview. By Sakshi, 17 Dec. 2025
Paul, Akhilesh. Interview. By Sakshi, 13 Dec.2025
Reena. Interview. By Sakshi, 17 Dec. 2025
Sharma, Ravi. Interview. By Sakshi, 10 Dec.2025
Thakur, Vipin. Interview. By Sakshi, 10 Dec. 2025
Vedika. Interview. By Sakshi, 12 Dec. 2025

Project report by : "Sakshi"BA 3rd yr

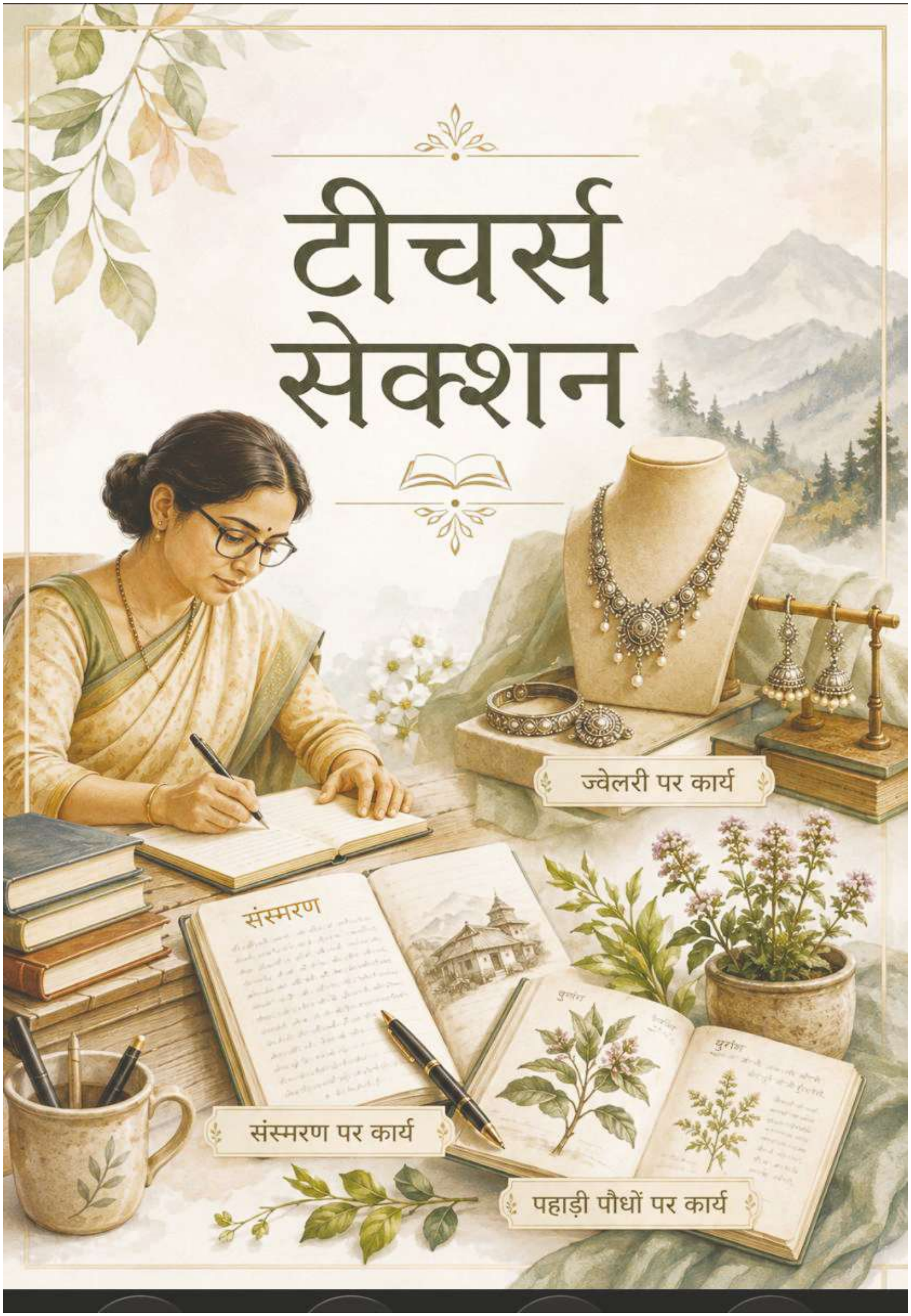
टीचर्स
सेक्शन
ज्वेलरी पर कार्य
संस्मरण
संस्मरण पर कार्य
पहाड़ी पौधों पर कार्य

Where Heritage meets the Contemporary : Pahadi Jewellery Reimagined

Dr Leena Vaidya

The desire to look beautiful and attractive is intrinsic to human nature. People follow a number of beauty regimes, fashion trends, and styling techniques to enhance their looks and express their individuality. This instinct, however, is not new. In the Indian tradition, even the deities and other divine figures are often shown wearing elaborate ornaments. People have been adorning themselves with various ornaments and decorative objects since ancient times. People then used flowers, leaves, amulets, shells, stones, animal bones and teeth as adornments, not merely to enhance their beauty but also as an expression of status, cultural belonging, protection from evil, and personal pride. Both men and women were equally enamoured by this tradition of self-adornment.

(source : internet)

(source : internet)

Kings and warriors wore heavy armlets, earrings, pearl strings, and necklaces as symbols of power and authority, while women adorned themselves with ornaments to reflect familial identity and prosperity, and, of course, to look attractive. Gradually, these natural ornaments were replaced by jewellery crafted from semi-precious and precious metals and stones. In the Himalayan regions, particularly in Himachal Pradesh, silver was an integral part of this tradition. Over the years, Pahadi jewellery has become a living expression of heritage, culture and collective memory. The rudimentary local designs of these ornaments reflect the stories of the generations of people who wore them with pride.

It is very interesting to note that what was once confined to rituals and ceremonial occasions has today emerged as a preferred element of contemporary fashion. Traditional Pahadi jewellery is now moving beyond the festive and bridal spaces to reclaim visibility within modern, ever-evolving style practices. In an age where fashion changes before you even know it, these handcrafted ornaments offer a distinctive sense of cultural authenticity and a deep-rooted identity. These Pahadi motifs, when reimagined artistically, go well with western silhouettes and contemporary styling, transforming the ancestral ornaments into modern statement pieces. Redesigning traditional ornaments into lighter and more wearable forms, while retaining

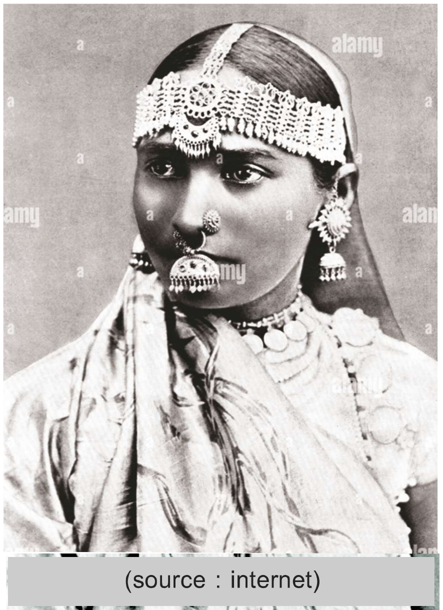

(source : internet)

their indigenous aesthetic essence helps preserve this heritage. As a designer, closely engaged with the artistic heritage of the hills, the writer seeks to examine how traditionally elaborate and cumbersome jewellery may be reimagined through contemporary design interventions. This synthesis of the traditional and the modern has increasingly attracted younger generations, particularly Gen Z, to stylised traditional ornaments.

Interestingly, old silver jewellery, once carefully tucked away in grandmothers' trunks, is now being brought out for a different purpose. Earlier, such ornaments were often melted down either for money or to create newer, more fashionable designs. Today, however, there is a growing effort to preserve these traditional pieces and reimagine them for contemporary wear. The writer has been sourcing old traditional pieces from jewellers all over Himachal, sold by people either out of compulsion or due to a lack of interest and awareness of the value of this heritage. An attempt is made to style the old necklaces as statement pieces. Traditional pendants are paired with western outfits, and heirloom jewellery is adapted to suit modern aesthetics without losing its original charm. In many ways, this revival reflects an emotional return to heritage, where jewellery is valued not only for its silver but also for its handcrafted, invaluable designs, memories and cultural identity.

The present article attempts to highlight the transformation of traditional Pahadi jewellery within contemporary fashion practices. Drawing upon selected heirloom ornaments inherited from older generations, the writer-designer explores how these elaborate and relatively heavy pieces can be redesigned without compromising their cultural essence. One may find the original traditional ornaments and their contemporary redesigned versions, conceptualised and created by the writer-designer, presented side by side to highlight the transformation these pieces underwent to become contemporary statement pieces. The comparative presentation aims to demonstrate how indigenous jewellery traditions can be preserved not merely through archival practices, but through meaningful utilisation and contemporary adaptation. Making these ornaments wearable and relevant again not only preserves the cultural heritage but also allows it to be experienced, appreciated and integrated into present-day fashion practices.

For a certain period, these traditional ornaments fell out of use due to ever-changing fashion and their heavy, cumbersome designs. Today, a renewed interest and a craze for indigenous craft and culture is making these pieces relevant among Gen Z.

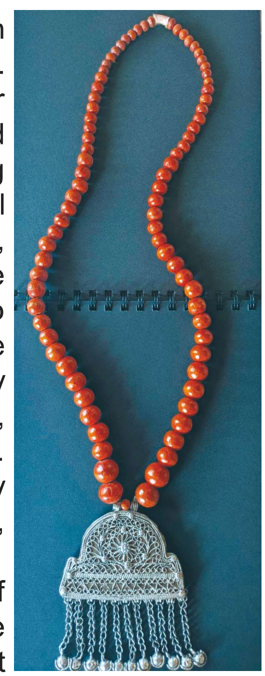

(designed by the author)

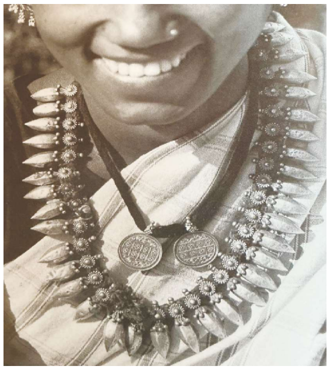

Old Champkali / jaumala
(source internet)

The following ornaments illustrate how tradition may be adapted rather than abandoned, enabling the handmade designs, the craftsmanship of the area and above all, the cultural heritage to be a part of our daily life.

1. Champkali/ Champalaki/ Jaumala:

It is a pan-Indian design inspired by the buds of Champa flower, generally offered to deities. It is believed that these 'Champa buds' made of silver possess the power to repel evil spirits. The first two pictures show champkalis traditionally woven into a Jaumala using thread. The next three pictures represent redesigned images that retain the ornament's original identity while incorporating colourful semi-precious stones—Sapphire, Turquoise, Coral and Jade– making it functional within a contemporary wardrobe.

Champkali with little variation, redesigned with sapphire.
(designed by the author)

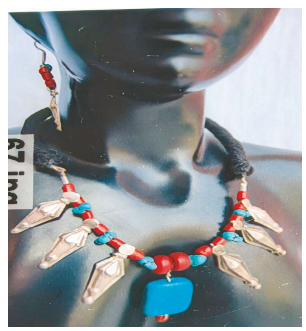

Pendant and ear-pieces with silver Champkali, *Coral and turquoise* (designed by the author)

***Champkali* with jade beads**
(designed by the author)

2. Forehead Ornament : Chiri tikka (Kangra)/ Tora-Tunki (Kullu)/ Daoni Tilak (Mandi)

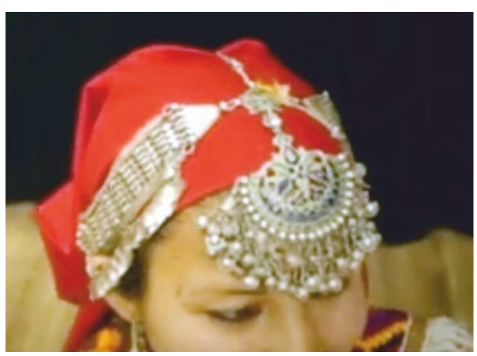

Traditional Daoni Tilak/ Toda Tunki
Image taken from internet

This prominent head ornament (with variations) is popular in the Himalayan region, known as Chiri tikka (चिड़ी टिक्का) in Kangra, Tora-Tunki (तोड़ा–टुनकी) in Kullu and Daoni Tilak (दाओनी तिलक) in Mandi districts of Himachal Pradesh. It used to be worn during festivals and marriages. Tunki is worn

Redesigned side band as a choker retaining its original identity

along the central hair parting to adorn the middle section of the head (as shown in the above picture). Tora (तोड़ा) is a decorative hairband that covers the head from both sides above one's ears. Sometimes Toda and tunki are joined with a Mang tikka, worn by the bride during marriage. This Daoni tilak/ Toda Tunki has a crescent-moon-shaped enamelled forehead ornament (Chand) and two broad, intricately made silver bands, adorned with silver pipal-leaf hangings at their lower edges. The writer-designer collected some old, broken Daoni tilaks and redesigned two different pieces, restoring the broken parts and the original enamel.

Central Chand converted into a pendant with semi-precious jade and silver beads' string.
(Designed by the author)

3. Amulets :

The first piece in the given picture is a part of an old amulet (also worn on the head with a chain and a hook). It originally had coral and turquoise embedded in it, which were partly broken and missing in this piece. It is redesigned into a pendant by inserting colourful zircons and hooks for a chain. It symbolises the sun and the moon. This crescent-moon shape is believed to protect against the evil eye. The second pendant has an image of a deity and showcases the exquisite craftsmanship of the mountain regions. This amulet is possibly from the Kinnaur area and was used as a Gau box for protective amulets. It is recreated as a pendant using raw turquoise stones, typical of Himalayan tribal jewellery. The idea behind recreation is to preserve the original by giving it a new look.

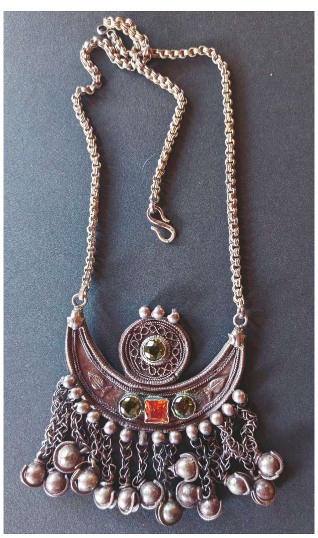

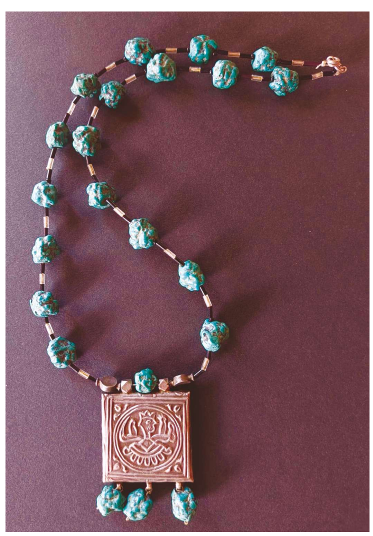

Two different kinds of old amulet redesigned as pendants using zircons and raw turquoise beads respectively. **(Designed by the author)**

4. Chandrahaar :

Old broken parts of Chandrahar redesigned using glass and silver beads, and silver chain and clasp.
(designed by the author)

The pieces of jewellery shown here are recreated from an old, broken chandrahaar. Chandrahaar is known for its considerable weight and limited wearability, its decorative units are thus separated to transform them into contemporary pendants that go well with any ethnic wear. The addition of blue and green glass beads add a fresh visual appeal and blends the traditional silver craftsmanship with modern design sensibilities. This redesign extended the life of an old, damaged heirloom ornament that was traded by the owner and was destined to be melted down. Through a thoughtful redesign, the ornament's originality, craftsmanship and cultural memory were retained while adapting it to contemporary aesthetics. This also reaffirms the idea of heritage as a living and evolving tradition.

Traditional Chandrahaar of Kullu distt.

The reinterpretation of ornaments, such as Jaumala or Champkali, Chiri tikka, Amulet and Chandrahaar reflect only a fraction of the possibilities inherent in the traditional jewellery of Himachal Pradesh. The rich heritage of old jewellery found across various regions of Himachal Pradesh offers immense scope for more design interventions. Ultimately, the survival of heritage does not lie only in the archives, private collections or museums. The museum definitely preserves the heritage, but fashion allows it to be lived. Traditional ornaments need not be confined to display boxes and safes, and admired from a distance due to their restrictive wear; in fact, through thoughtful redesign, they can be a part of a contemporary ensemble. In this way, heritage will not merely be something from the past, but something that can be recreated and carried forward into the future.

(The writer has done diploma in Fashion Designing from NIFD and pursues designing as a hobby)

Assistant Professor (Eng.)
G.C. Panarsa, Distt. Mandi (H.P.)

यादों का पिटारा- हिमाचल से केरल तक का सफर

डॉ. जी. सुजिदा

हिमाचल से दूर केरल तक का वह आखिरी सफर आज भी मेरे मन में एक टीस बन कर उभरता है। हिमाचल की वादियों से दूर समुद्र की लहरों तक पहुंचते मेरे मन में यह कभी नहीं आया था कि बचपन की वह सुनहरी यादें समय रहते अब इतना याद आने वाली हैं। कालेज में जब क्लब बांटे गए तो मुझे 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' का भार सौंपा गया। चूंकि सभी अध्यापकों को कई क्लबों मे, रखा गया था। लेकिन न जाने मुझे जब इस क्लब में काम करने मौका मिला तो मानो गड़े मुर्दे उठ खड़े हो गए हो। क्योंकि 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' के तहत केरल को हिमाचल से जोड़ा गया था। अचानक मेरी आखों के सामने पूरा बचपन दौड़ने लगा। हिमाचल में गुजारे हर एक पल का हिसाब मेरा मन करने लगा। वैसे भी, हर बार, जब भी हिमाचल सुनती हूं तो जहन में मौन बैठा बचपन अपनी बाहें पसार कर मुझे अपने बैजनाथ बुला लेता है। मता रानी के मंदिर की घंटियों की आवाज, शिव मंदिर के शंख की धुन कानों में गुंजती है। वो कीर्तन करना, भजन गाना, दौड़-दौड़ कर मंदिर जाना सब याद आ जाता है।

समय के साथ चीजें बहुत जल्दी बदल जाती हैं। आंखों के सामने वही बचपन दौड़ा चला आता है। स्कूल की सीढ़ियां उतरने-चढ़ने कैसे दसवीं क्लास पास हो गए पता ही नहीं चला। फिर आगे की पढ़ाई घर के पास वाले स्कूल में हुई। पूरा घर एक कमरे की चार दीवारों में सिमट सा गया था, जहां मैं मेरे मम्मी-पापा, भाई रहा करते थे। आज शायद उस जगह का नामो-निशान मिट चुका है। लेकिन न जाने हिमाचल प्रदेश के बैजनाथ का नाम सुनते ही आज भी अपनेपन का वह एहसास दोबारा जाग उठता है। बचपन की वह छोटी-छोटी यादें : वह जो हमारे कॉलोनी का ग्राउंड था, उस ग्राउंड में हम लोगों का खेलना-कूदना, पूरा बचपन ही आंखों में सिमट जाता है। बचपन में मैंने अपने आप ही मौसम जानने का नुस्खा ढूंढ निकाला था। सुबह उठते ही दूर वाले पहाड़ पर देखना होता था, यदि उस दूर वाले पहाड़ पर धूप खिल रही है तो आज हमारे यहां भी धूप होगी, और यदि उस पहाड़ पर बादल छाएं है तो हमारे यहां बारिश जरुर होगी। एक दो बार मेरी यह मौसम की तरकीब सही भी हुई। यह जो विज्ञान था यह मैंने अपने आप खोजा था। यह विज्ञान पूरी दुनिया में सिर्फ मेरा विज्ञान था। बहुत से परिवार बसते थे वहां, मानो पूरा हिमाचल शायद इस कॉलोनी में बसा हुआ था। हिमाचल के हर छोर के परिवार यहां बसते थे। सब परिवारों में बहुत प्यार और स्नेह था। हिमाचल की संस्कृति को मैंने बचपन से ही

जानने की कोशिश की है या यूं कह लो कि मुझे जानने की जरूरत ही नहीं पड़ी बचपन से ही जैसे-जैसे मैंने रोटियां खाई है वैसे-वैसे मुझे पहाड़ों की वह संस्कृति बिल्कुल अपनी सी लगती थी। मुझे पता नहीं था कि मैं केरल की ही वासी हूं बचपन में जब दोस्तों के साथ खेलते थे तो लगता कि मैं हिमाचली ही हूं हिमाचली होना गर्व की बात है क्योंकि यह देवभूमि है। पहाड़ ही पहाड़, उसकी तराईया, नदियों का बहना, खड्ड, आदि से घिरा हिमाचल।

पहाड़ी बोली में बात करना, शायद : पहाड़ी बोली मैं थोड़ा-थोड़ा भूल रही हूं क्योंकि आजकल ज्यादा पहाड़ी नहीं बोलते लेकिन फिर भी जो बचपन में सीखा हुआ है, वह तुम कभी नहीं भूल सकते ना इसलिए कभी-कबार परिवार वालों से बात कर लिया करती हूं या फिर हिमाचल के दोस्तों से ही पहाड़ी पर बात किया करती हूं। पहाड़ी बोली में जो अपनापन है मुझे नहीं लगता कि वह मलयालम की भाषा में कहीं मुझे मिला होगा, इसका कारण यह है कि मैं पहाड़ी को ही अपनी मातृभाषा समझती थी। वहां के स्कूल में अपने अध्यापकों को हम गुरु और दीदी कह के बुलाया करते थे, क्योंकि मेरी पढ़ाई सरस्वती विद्या मंदिर स्कूल से हुई है। सर्दियों के दिनों की यादें, गर्मियों के दिनों की यादें, बरसात के दिनों की यादें हर मौसम कुछ ना कुछ यादें छोड़ जाता था। सर्दियों में धूप सेकना। बरामदे में बैठ कर बहुत देर तक बातें करना। कॉलोनी की आंटियों का मुझसे पूछना कि क्या मैं केरल जाकर भी हिमाचल को याद करुंगी या नहीं? वे हमेशा कहती कि तुम परदेसी हो लेकिन परदेसी क्या होता है वह मैं नहीं जानती थी लेकिन जैसे-जैसे बड़ी हुई तो समझ में आया की हां सचमुच हम परदेसी ही है। केरल से हिमाचल रहने के लिए आए हैं और मम्मी तो हमेशा मलयालम में ही बात करती। घर के अंदर हम सब मलयालम में बात करते और बाहर निकलते ही पहाड़ी या हिंदी बोलते। बचपन में मैं सोचती कि सब लोग हमारी ही तरह घरों के अंदर मलयालम बोलते होगें और बाहर पहाड़ी। लेकिन जब बड़ी हुई तो समझ आया कि भारत के दक्षिण छोर में बसा केरल हम लोगों का अपना शहर है और हम लोग भारत के उत्तर छोर में काम के सिलसिले से रह रहे हैं। अच्छा तो यह होता है परदेसी होना। शायद मेरी तरह ऐसे बहुत से बच्चे होंगे जो अपना शहर या गांव छोड़ कर दूसरी संस्कृति में रहते होंगे।

बहुत सी ऐसी बातें हैं जो मैं भूल रही हूं लेकिन इस यादों के पिटारे में वहां की शादी की यादें है, जो

बहुत खास है, क्योंकि मैंने पहली बार शादी देखी थी और वह हिमाचल की शादी थी। किसी भी संस्कृति में शादी इससे पहले मैंने नहीं देखी थी, जितना मुझे याद है, वह दुल्हन हमारे ही कॉलोनी की मीनू दीदी थी। हिमाचली शादी के रीति-रिवाज़ भी बड़े ही अनोखे थे, जैसे दुल्हन के मामा-मामी का शादी के घर आना और पानी भरना, दुल्हन के बालों में तेल डालना, मेंहदी, हल्दी, संगीत, बारात का आना और विदाई में मामा का दुल्हन को गोदी में उठाकर पालकी में बैठाना आदि। पूरे कॉलोनी में खुशी की लहर थी, मानों शादी अपने घर की ही हो। जिंदगी में पहली बार हिमाचली संस्कारों को मैंने इतने करीब से देखा था। हिमाचली शादियों में तो हर एक अवसर पर गीत गाए जाते हैं। हिमाचली शादी में हर एक रीति-रिवाज़ के लिए अलग-अलग गीत बने हैं, जो पहाड़ी बोली में गाए जाते हैं। कांगडी धाम, मंडियाली धाम का स्वाद तो जैसे जन्नत की याद दिला देता है। आज भी मेरी जीभ उस स्वाद को तलाशती है। सेपू बड़ी, मदरा, मीठ्ठा भात ये कुछ ही नाम हैं, जो आज भी धाम के नाम पर मेरी यादों में जिंदा हैं।

पनारसा कॉलेज के बच्चे जब हमारे कालेज आए तो ऐसा लगा कि वे सब जो हिमाचल से आए हैं मेरे अपने ही हैं। मैं उन्हें कभी गैर मान ही नहीं सकती क्योंकि हिमाचल में मेरा बचपन आज भी जिंदा है। डॉ. उरसेम जी से मेरी मुलाकात एक सेमिनार के दौरान हुई। जब मुझे मालूम हुआ कि हिमाचल से कोई अतिथि सेमिनार के लिए आए हैं तो मैं उनसे मिलने के लिए बेताब हो उठी, उस दिन का वह मिलन मेरे और उरसेम जी की मित्रता को एक नया मोड़ दे देगा ऐसा कभी नहीं सोचा था। उस मित्रता ने हमें और हमारे कॉलेजों को भी जोड़ दिया। वाकई में हमारी मित्रता एक नया रंग लाई। बिन्दु मैम से भी एक नाता सा जुड़ गया है। हिमाचल से केरल आए बच्चों को देख कर मुझे अपना दौर याद आ गया। पनारसा कॉलेज के छात्रों में जो उत्सुकता थी उससे कई दुगनी मेरे अंदर थी। जो सफर उन्होंने हिमाचल से केरल के लिए तय किया था, वही सफर मैं 20 साल पहले कर चुकी थी। हिमाचल की संस्कृति से अलग केरल की संस्कृति को महसूस करना वाकई में एक अनूठा अनुभव रहा। उत्तर की संस्कृति का दक्षिण की संस्कृति से मेल होना, एक सुखद एहसास था।

जब भी हिमाचल के बारे में सोचती हूं तो लगता है कि अपना शहर छोड़कर किसी दूसरी जगह पर आ कर बस गई हूं। बहुत सी यादें आज भी मेरे अंदर दबी हुई हैं पर शायद समय ने उन यादों पर मिट्टी डाल दी है लेकिन कभी-कभी मिट्टी को हटाकर अपनी यादों के पिटारे से कुछ यादें संजौने की कोशिश करती हूं। बैजनाथ का शिव मंदिर, वर्कशाप का माता रानी का मंदिर, ऐसी बहुत सी जगह हैं, जो यादों को जिंदा रखती हैं। सावन के महीने में कड़क ठंडी सर्दी में मेरा और मेरी मम्मी का शिव मंदिर चार या पांच बजे जाना। लंबी-लंबी कतारों में खड़े हो कर शिव जी के दर्शन करना, सब मानों कल की ही बात हो। अपने इस यादों के पिटारे से बहुत कम ही चीजे बाहर रख पाई हूं। अगली बार यादों के कारंवें को दुबारा आगे बढ़ाने की कोशिश करूंगी।

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
निर्मला कौलेज, स्वायत्त, मुवाटुपुषा, केरल

लाहौल और स्पिति से कुल्लू जिले में होने वाले पलायन के समाजशास्त्रीय प्रभाव

सुरेश कुमार

सार– समाज का पलायन एक ऐसा शब्द है जो एक समाज में जनसंख्या को कम और दूसरे समाज में जनसख्या वृद्वि का कारण बनता है। पलायन के कई कारण होते हैं, जैसे ग्रामीण समुदाय का शहरों की तरफ पलायन, आर्थिक अवसरों की कमी, सामाजिक भेदभाव, राजनीतिक अस्थिरता, भौगोलिक परिस्थितियाँ और प्राकृतिक आपदाएँ आदि। भारत में पलायन विशेषकर गांवों से शहरों की तरफ काम की तलाश में, गरीबी, बेरोजगारी और कृषि संकट से जुड़ा है, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक असमानता और सांस्कृतिक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। यह अध्ययन हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र लाहौल और स्पिति से कुल्लू जिले में होने वाले पलायन के समाजशास्त्रीय प्रभाव पर आधारित है। इस पलायन का प्रारंभिक कारण कठिन भौगोलिक परिस्थितियाँ, आवागमन के साधनों, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि का आभाव रहा है। विकास और आधुनिकीकरण के साथ पलायन के कारण भी बड़े हैं। प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य हेतू पलायन के कारणों और प्रभाव का अध्ययन है।

संकेत शब्द– पलायन, आर्थिक आभाव, सामाजिक प्रभाव, भौगोलिक कारण, जनजातीय समाज।

पृष्ठभूमि : भारत के इतिहास में पलायन एक निरंतर चलने वाली वह प्रक्रिया रही है, जो कभी स्वेच्छिक तो, कभी मजबूरी के कारण हुई, जिसने समाज के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक ढांचे को गहराई से प्रभावित किया है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक भारत तक, पलायन से सभ्यताओं का विकास भी हुआ तथा ग्रामीण और शहरी जीवन में बदलाव भी परन्तु आज पलायन भारत में एक समस्या भी और चुनौती भी है।

हर साल लाखों लोग बेहतर जीवन, रोजगार और शिक्षा की तलाश गांवों से शहरों या विदेशों की ओर जाते हैं। इस कारण देश, राज्य और समाज के जीवन में असंतुलन पैदा होता है। पलायन के सन्दर्भ में अशोक त्यागी लिखते हैं "आईएस के अत्याचारों से पीड़ित होकर सीरिया तथा इराक में व्यापक आधार पर पलायन हो रहा है। वे अवैध तरीके से यूरोप के देशों में जा रहे हैं। अतंर्राष्ट्रीय संस्थाएं भी इस पलायन को नहीं रोक पा रही है। म्यांमार के मुस्लिमों के पलायन ने पूरे विश्व का ध्यान अपनी ओर खींचा है। भारत सहित एशिया के विभिन्न देशों में ये विस्तापित आ रहे हैं। पलायन केवल भारत की ही नहीं, वैश्विक समस्या बन चुका है। सबके पीछे मूल कारण समान ही है। जीवन की सुरक्षा चाहे वह रोजगार की हो या फिर अस्मिता की रक्षा की, पलायन का कारण बनता है। भारत में भी कश्मीर के पंडितों का विस्थापन एक समस्या बना हुआ है। विश्व में पहली बार ऐसा हुआ कि एक वर्ग विशेष को अपना सब कुछ त्यागने के लिए विवश कर दिया गया। आज भी देश में ऐसी व्यवस्था नहीं बनाई गई है कि विवशता में किया गया पलायन रोका जाए।"[1]

प्रस्तुत अध्ययन हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र लाहौल–स्पिति से लोगों का पलायन सीमावर्ती

जिला कुल्लू पर आधारित है, जिस पलायन का मुख्य कारण दुर्गम बर्फीले पहाड़ों में मूल सुविधाओं और विकास का आभाव रहा है।

लाहौल–स्पिति हिमाचल प्रदेश का दुर्गम बर्फीले पहाड़ों वाला क्षेत्र है। यहाँ की भौगोलिक स्थिति ने यहाँ के लोगों के जनजीवन को बहुत प्रभावित किया है। समाज जीवन की मूल आवश्यकताओं की दृष्टि से हिमाचल प्रदेश का यह क्षेत्र भारत की आजादी के लगभग छः दशकों तक मूल सुविधाओं से वंचित रहा। अटल टनल जो इस क्षेत्र की विकास की नींव है, का "उद्घाटन 3 अक्टूबर 2020 को किया गया है।" [2]

मूल सुविधाओं की कमी के कारण लाहौल और स्पिति से कुल्लू की तरफ पलायन का इतिहास पुराना है। इस पलायन ने लाहौल–स्पिति के जन जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया है और आज भी यह एक बड़ी चुनौती है।

पलायन के प्रभाव – पलायन का सबसे ज्यादा प्रभाव सामाजिक संरचना पर पड़ता है। हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र लाहौल–स्पिति की समाजिक संरचना पर भी पलायन का बहुत गहरा प्रभाव प्रभाव है। पलायन के कारण यहाँ के गाँव व् घरों में रहने वाले अब बुजुर्ग ही है। वैसे तो यहाँ की जनसख्या क्षेत्रफल की अपेक्षा बहुत कम है और साथ ही पलायन के कारण सामाजिक संरचना और अधिक प्रभावित हुआ है। 2011 की जनगणना के अनुसार लाहौल–स्पिति की कुल जनसंख्या मात्र 31564 और क्षेत्रफल 13841 वर्ग कि.मी. है।[3]

पलायन के कारण सामाजिक असंतुलन ऐसा रूप लेता है कि क्षेत्र विशेष में बुजुर्ग, महिलाएँ और बच्चे पीछे रह जाते हैं, जिससे पारिवारिक ढाँचा कमजोर होता है। यही जनजातीय क्षेत्र लाहौल–स्पिति में हो रहा है, जिस कारण कृषि उत्पादन और ग्रामीण अर्थव्यवस्था बाहरी मजदूरों और ठेकेदारी व्यवस्था पर निर्भर हो गया है।

पारिवारिक संरचना में बदलाव – भारतीय पारिवारिक संरचना जो संयुक्त परिवार पर आधारित रहा है। हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र लाहौल–स्पिति की पारिवारिक संरचना इससे भिन्न नहीं रहा है परन्तु पलायन ने पारिवारिक संरचना को प्रभावित किया है। इस क्षेत्र की पारिवारिक संरचना अब संयुक्त से एकल हो गया है।

संस्कृति और बोली पर प्रभाव – पलायन के कारण बोली, संस्कृति, रीति–रिवाज भी प्रभावित हो रहे हैं। लाहौल–स्पिति के समाज का जो भाग कुल्लू, मनाली, चंडीगढ़ और दिल्ली पलायन कर चुके है, उनकी बोली, संस्कृति और रीति–रिवाजों में उन क्षेत्रों का प्रभाव बढ़ रहा है और वह अपनी मौलिकता से दूर भी हो चले हैं।

व्यवसायों में बदलाव – पारम्परिक रूप से लाहौल और स्पिति के लोगों का व्यवसाय खेती–बाड़ी और पशुपालन रहा है। परन्तु पलायन ने यहाँ के लोगों के व्यवसाय में बदलाव किया है। अब यहाँ के लोग होटल व्यवसाय, पर्यटन और दुकानदारी कर रहे हैं।

लाहौल–स्पिति के पलायन कर चुके लोगों के जीवन में आये सकारात्मक परिवर्तन – पलायन ने जनजातीय क्षेत्र के लोगों के जीवन और समाज में जहा चुनौतियां पैदा की है, वहीं कुछ सकारात्मक परिवर्तन भी देखने को मिलता है। जैसे जीवन स्तर में सुधार, राष्ट्र विकास की मुख्य धारा तक पहुँच, व्यावसायिक विकल्प, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ तथा महिला सशक्तिकरण और आत्मनिर्भरता आदि।

जीवन स्तर में सुधार – जनजातीय क्षेत्र के लोगों को पलायन से बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुच से इनके जीवन स्तर में सुधर हुआ है। लाहौल–स्पिति के लोग पलायन से विकास का लाभ ले पा रहे हैं और

राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ पा रहे हैं। व्यावसायिक विकल्प ने जनजातीय क्षेत्र के लोगों की आर्थिकी को, कृषि और पशुपालन पर आश्रित नहीं छोड़ा है। होटल, पर्यटन और दुकानदारी से जुड़ने से वर्ष भर इन्हें रोजगार से जोड़ा है, अन्यथा बर्ष के छः महीने यहाँ लोग घरों के अंदर ही काम करते थे।

महिला सशक्तिकरण और आत्मनिर्भरता – हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र लाहौल की महिलाओं का समाज में स्थान सम्मानीय है और रहा भी है। समाज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रहती ही है, परन्तु पलायन के बाद महिलाएं विभिन्न व्यवसायों से जुड़कर आर्थिक दृष्टि से भी सशक्त हुई है।

निष्कर्ष – अध्ययन से स्पष्ट है कि हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र लाहौल–स्पिति से लोगों के होने वाले पलायन से जहाँ जनजातीय क्षेत्र लाहौल–स्पिति में सामाजिक संरचना प्रभावित हुई है, वहीं इस क्षेत्र का जनजीवन जो भौगोलिक कठिनता और दुर्गम पहाड़ों में सिमटा हुआ था, उस समाज को, उस क्षेत्र को पलायन से राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़कर विकास का लाभ भी मिला है। इसलिए इन क्षेत्रों से लोगों के पलायन से सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही तरह के प्रभाव जन–जीवन पर पड़ा है।

सन्दर्भ सूचि –

1. अशोक त्यागी, (2024), कल का इतिहास हूँ मैं (भाग–2), उत्कर्ष प्रकाशन, पृष्ठ 66–67
2. अटल सुरंग का इतिहास,उद्घाटन, शिलान्यास। Atal Tunnel Details in hindi World Longest Highway Tunnel & Deepawali.
3. हिमाचल प्रदेश सामान्य ज्ञान जिला दर्शन, उपकार पब्लिकेशन, पृष्ठ. 67

सहायक आचार्य, समाजशास्त्र
राजकीय महाविधालय पनारसा (मण्डी)
E-mail-id : skharcue6@gmail.com

देवदार का महत्त्व

अनीता

खण्डा: पञ्च हिमालयस्य कथिता नेपाल-कूर्माचलौ।
केदारोऽथ जलंधारोऽथ रुचिर : कश्मीर-संज्ञोऽन्तिम: ।।

स्कंद पुराण में हिमालय का वर्णन एक पवित्र विशाल पर्वतमाला के रूप में किया गया है। हिमालय को पर्वतों का राजा कहा गया है। हिमालय को पांच प्रमुख खण्डों में विभाजित किया गया। नेपाल, कूर्माचल, केदार, कश्मीर, जलंधर। हिमालय के यह पांच खण्ड केवल पर्वत और चट्टानों का समूह नहीं है, यह अपनी वनस्पतियों के लिए भी प्रसिद्ध हैं। हिमालय क्षेत्र में ऊंचाई और तापमान के अनुसार अलग-अलग प्रकार की वृक्ष पाए जाते हैं निचले क्षेत्र में चीड़, साल के वृक्ष पाए जाते हैं जबकि उच्च क्षेत्र में देवदार ब्लू पाइन स्प्रूस आदि के वृक्ष पाए जाते हैं। देवदार के मुख्य रूप से चार प्रकार हैं- लेबनान का देवदार एटलस देवदार, साइप्रस देवदार और हिमालय देवदार। हिमालयी देवदार यहां प्रजाति मूल रूप से पूर्वी अफगानिस्तान, दक्षिण-पश्चिमी, तिब्बत-पश्चिमी नेपाल और उत्तर मध्य भारत में पाई जाती है। हिमालयी देवदार का वैज्ञानिक नाम सेड्रस डियोडारा है। यह पाइनरी परिवार से संबंधित है, यह सदाबहार और शंकु धारी वृक्ष है। यह वृक्ष 1200 से 3000 मीटर की ऊंचाई वाले ठंडे पहाड़ी क्षेत्रों में पनपता है। इसे पनपने के लिए अच्छी जल निकासी मिट्टी की आवश्यकता होती है। यह 40 से 60 मीटर तक ऊंचा हो जाता है, युवावस्था में इसका आकार शंकु नुमा होता है जबकि जो परिपक्व पेड़ होंगे वह शंकु नुमा दिखाई नहीं देते हैं तब यह पेड़ फैल जाता है। इसकी पत्तियां सुई जैसी तीखी होती है और यह गुच्छो में व्यवस्थित होती है। इस पेड़ की छाल पतली और भूरे रंग की होती है। हिमालय देवदार भारत में हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड राज्य में पाया जाता है। हिमाचल प्रदेश में कुल मापित बनाच्छादित क्षेत्र का लगभग 10.62 प्रतिशत हिस्सा देवदार वनो का है। हिमाचल प्रदेश में देवदार को 'दियार' कहा जाता है। देवदार यहां एक पूजनीय वृक्ष है। देवदार शब्द देव (देवता) और डारु (वृक्ष) दो शब्दों से मिलकर बना है। अर्थात् देवताओं का वृक्ष। स्कंद पुराण में देवदार के जंगलों को दारूक वन कहा गया है, पुराणों में शिव

वृक्षों का वर्णन है। लोकगीत –

कुल्लू देशे री कहाणी...
सेऊआ रा बगीचड़ू बोण केऊआ रा लाणा..।

लोक साहित्य के अतिरिक्त शिष्ट साहित्य में भी देवदार के वृक्षों का वर्णन मिलता है। राहुल सांकृत्यायन ने अपनी यात्राओं में देवदार के वृक्षों और यहां के वनों का विस्तृत वर्णन किया है। देवदार वृक्ष उन्हें सबसे प्रिय था। हिंदी के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पंत ने अपनी साहित्य में देवदार के वृक्षों का वर्णन क्या है। चिदंबरा काव्य संग्रह में देवदार के वृक्षों और उसे उनकी प्रकृति छटा का बहुत ही मनमोहन उत्कृष्ट वर्णन किया गया है।

प्रसिद्ध चित्रकार निकोलस रोरिक ने भी अपने चित्रों में यहां के वन और प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन किया है। अपने जीवन के अंतिम वर्ष उन्होंने नगर में बिताए, जहां वे देवदार, चीड़ के घने जंगलों के बीच रहते थे।

लोक साहित्य में उन्हीं चीजों का वर्णन मिलता है, जिनका प्रयोग हम दैनिक जीवन में करते हैं। देवदार वृक्ष का प्रयोग हिमाचल के हर घर में किया जाता है- पशुओं के लिए देवदार की पत्तियों का इस्तेमाल, घर की दीवारों में लिपाई के लिए देवदार के वृक्षों से निकलने वाले पॉलन, जिसे स्थानीय भाषा में 'पठा' कहा जाता है, घर के मुख्य दरवाज़े पर रंगोली बनाई जाती है। देवदार के प्राकृतिक कीट निवारक गुणों के कारण कुल्लू जिलों जिले में इसकी लकड़ी का प्रयोग मांस, अनाज को सुरक्षित रखने के लिए किया जाता है। आचार्य चरक ने इसे कई महत्वपूर्ण 'महाकषाय' (औषधीय वर्गों) में शामिल किया है।

इसका उपयोग मुख्य रूप से वात और कफ से जुड़े विकारों को शांत करने, सूजन कम करने, दर्द निवारण, त्वचा रोगों और पाचन समस्याओं को ठीक करने के लिए किया जाता है। देवदार के तेल की मांग इतर साबुन उद्योगों में होती है। भारतीय रेल विभाग द्वारा भी प्रारंभ में रेल की पटरिया बनाने के लिए देवदार की लकड़ी का ही प्रयोग होता था।

देवदार का वृक्ष प्राचीन समय से वर्तमान तक हमारे लिए बहुत उपयोगी रहा है लेकिन वर्तमान में जलवायु परिवर्तन वनो की कटाई और बुनियादी ढांचे के विकास जैसी गंभीर चुनौतियों के कारण देवदार वृक्ष की संख्या कम होती जा रही हैं अनियमित बर्फबारी के कारण देवदार के प्राकृतिक आवास खतरे में है मौसमी पाले से आसानी से प्रभावित हो रहे हैं शुष्क मौसम की स्थिति में जल की कमी से उनकी शाखाएं सूखने और पत्तियों के झड़ने की समस्या बढ़ रही है।

सहायक आचार्या, हिंदी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, पनारसा, ज़िला मण्डी।

हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र लाहौल वेशभूषा, खानपान और रहन–सहन

डा. कविता कटोच

सार – हिमाचल प्रदेश का जनजातीय क्षेत्र लाहौल अपनी विशेष संस्कृति खानपान, रहन–सहन और वेशभूषा के लिए जाना जाता है॰ दुर्गम बर्फीले पहाड़ों में बसी खूबसूरत और समृद्व संस्कृति के लिए जाना जाने वाला ये क्षेत्र विभिन्न संस्कृतियों का संगम स्थान भी है। यहाँ के लोगों का जीवन कठिन अवश्य है, परन्तु विशेष भी है, क्योंकि यह समाज अपनी परम्पराओं, रीति रिवाज और जीवन शैली पर गर्व करता है। सामाजिक एकता, समृद्व परम्पराएँ, ईश्वर में आस्था, सामाजिक सद्भाव यहाँ के लोगों व् समाजों की विशेषता है। प्रस्तुत अध्ययन "हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र लाहौल के वेशभूषा, खानपान और रहन–सहन" पर आधारित है। अध्ययन व्याख्यात्मक है, जिसमें यहाँ की संस्कृति, वेशभूषा खानपान और रहन–सहन की विशेषताओं को जानने, समझने का प्रयास है।

संकेत शब्द – समृद्व परम्पराएँ, वेशभूषा, लाहौल, जनजातीय समाज, जनजातीय संस्कृति, सामाजिक समरसता।

भूमिका – लाहौल हिमाचल प्रदेश का एक ऐसा जनजातीय क्षेत्र है, जो हर साल सर्दियों के छः महीने संपूर्ण संसार से कट जाता है। आवागमन के सब साधन बिल्कुल ही काम करना बंद कर देते हैं। दुर्गम, बर्फीले पहाड़ों के बीच स्थित होने तथा राष्ट्र की मुख्य धारा से कटे रहने के कारण भारतीय संविधान द्वारा इस क्षेत्र को जनजातीय क्षेत्र घोषित किया गया है परन्तु कठिन जीवन परिस्थितियों के बाबजूद यह क्षेत्र अपनी समृद्व संस्कृति, सामाजिक सामंजस्य, और धार्मिक सद्भाव के कारण अपनी एक अलग पहचान रखता है। विभिन्न संस्कृतियों के समन्वय से एक समृद्व संस्कृति के लिए भी यह क्षेत्र जाना जाता है।

यह अध्ययन हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र लाहौल की वेशभूषा, खानपान और रहन–सहन पर आधारित है। इस दृष्टि से अध्ययन के लिए इस क्षेत्र की अपनी एक अलग विशेषता है। जहाँ आज विकसित समाज सांप्रदायिक और जातीय समस्याओं से जूझ रहे हैं, वहीं हिमाचल का यह जनजातीय समाज मानवीय एकता का एक सुंदर उदहारण है। अध्ययन यहाँ की सामाजिक विशेषताओं पर आधारित है, जिसे यहाँ की वेशभूषा, आभूषण, खानपान और रहन–सहन प्रमाणित करते हैं। सामाजिक विशेषताओं के अध्ययन में जैसे–
वेशभूषा – वेशभूषा की जब बात होती है तो, वेशभूषा क्षेत्र विशेष की पहचान को दर्शाता है। जनजातीय क्षेत्र लाहौल के लोगों की वेशभूषा की अपनी एक अलग विशेषता है, जो प्रदेश के अन्य समाजों से इस क्षेत्र को अलग पहचान देता है, या यहाँ के लोगों की वेशभूषा से यहाँ के लोग जाने जाते हैं।

प्राचीन समय में जनजातीय क्षेत्र लाहौल में स्त्रियों व् पुरुषों के पहनावे में बहुत अधिक अंतर नहीं होता था॰ पुरुष और स्त्री दोनों ही कतर पहनते थे। पुरुषों का कतर सामान्यतया सफेद व् स्लेटी रंग की ऊन की पट्टी से बना घुटनों तक लम्बा होता था। कतर के किनारों में अंदर चौड़ा काले रंग का सूती कपड़ा लगाया

जाता था जिसे संजाप कहते थे। कतर के ऊपर फिर बास्कट पहना जाता था जो कि किसी भी रंग का हो सकता था। कतर के साथ में तंग पाजामा, कमरबंद से कतर बांधा जाता है। ठीक उसी प्रकार जैसे की नाईट–गाउन पहना जाता है। बदलते समय के साथ यहाँ पुरुषों के कतर पहनने का रिवाज कम हो गया है। जिसका स्थान आज कोट–पेंट, टीशर्टजीन्ज ने ले लिया है, परंतु यह महत्वपूर्ण है कि त्यौहार मेलों जैसे शुभ अवसरों पर ***कतर*** पहनने के रिवाज में बदलाब नहीं हुआ, यह परम्परा आज भी जीवित हैं।

लाहौल की महिलाओं के पहनावे को देखें तो ***कतर*** लाहौल की महिलाओं का तो मुख्य पहनावा हैस जिसे वह अपनी सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक मानती हैस जिसकी महता को महिलाओं ने बदलते समय के साथ कम नहीं होने दिया। महिलाओं का कतर आमतौर पर नस्वारी रंग का ही होता है, जिस पर हरे रंग के सूती कपड़े का संजाप चढ़ाया हुआ होता है। महिलाओं के ***कतर*** के बाहरी किनारों पर लगभग अढ़ाई से तीन इंच की ऊंचाई पर जरी का एक लेस (संबम) चढ़ाया हुआ होता है। हरे या नस्वारी रंग का ही बास्कट और काले या नस्वारी रंग का तंग पाजामा यहां की औरतों की प्रमुख वेशभूषा होती है।

ऐतिहासिक कारणों से यहां के लोगों के परिधान और खान–पान में कुछ भिन्नता है। पट्टन घाटी के लोगों के पूर्वज पश्चिम और दक्षिण से आए आर्य या अर्ध–आर्य थे, जबकि भागा वादी के लोगों के पूर्वज लद्दाख तथा चंद्रा वादी व खोक्सर के आस–पास के गांवों के लोगों के पूर्वज स्पिति से आए थे। अतः इन लोगों के खान–पान और परिधानों में अपने पूर्वजों का प्रभाव होना एक स्वाभाविक सी बात है, परंतु इसका यह तात्पर्य कतई नहीं है कि इन लोगों के खान–पान और परिधान में बहुत अंतर है। यह अंतर यहाँ के लोग ही देख सकते हैं।

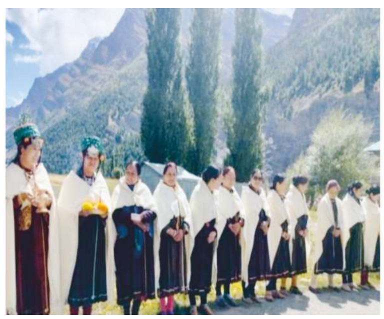

महिलायें पारम्परिक पोशाक कतर में ------पारम्परिक पोशाक कतर विशेष अवसर –(पुरुष पारम्परिक पोशाक कतर – दुनीचंद ठाकुर मडग्रा के सोजन्य से)

आभूषण – भारतीय संस्कृति में आभूषण मात्र सोंदर्य का प्रतीक नहीं बल्कि संस्कृति, परंपरा और व्यक्तिगत पहचान का भी प्रतीक हैं। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओ द्वारा पहने जाने वाले आभूषणों की अपनी–अपनी विशिष्ट पहचान और संस्कृति है। हर राज्य की संस्कृति में वहां के गहने उनके इतिहास, परंपरा और स्थानीय शिल्पकला को दर्शाते हैं। जैसे राजस्थान के कुंदन और जड़ाऊ, तमिलनाडु के पांबदम, बंगाल के चूड़ियाँ और महाराष्ट्र के नथ भारत की विविधता को उजागर करते हैंᐧ ठीक वैसे ही हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र लाहौल में आभूषणों का इतिहास बेहद पुराना है और आभूषणों की दृष्टि से क्षेत्र की अपनी विशिष्ट पहचान और शैली है। लाहौल में महिलाओं के पास आभूषणों का एक बहुत बड़ा भंडार होता है, जो शादी–ब्याह जैसे शुभ अवसरों पर पहना जाता है। इनमें से कुछ प्रमुख आभूषणों हैं, जैसे –

(1) मुलन्, (2) पोशाल, (3) दुखेरचा (4) चिरका, (5) बाई या बाड़ी, (6) कंठी, (7) तड़का, (8) छब, (9) नङ, (10) लौंग तथा (11) गुइथब। जहां तक मुलन्, पोशाल, दुखरेचा, चिरका तथा छब नामक आभूषणों का संबंध है वे केवल बौद्ध संप्रदाय की महिलाएं ही पहनती हैं, जबकि बाड़ी या बाई, कंठी, लौंग, गुईथब, तड़का, तथा नङ दोनों स्वांगला और बौद्ध समुदाय की औरतें पहनती हैं। यहाँ के आभूषणों में कंठी व् तड़का सामान्तः महिलाएं पहनती है। कंठी गले में और तड़का कानों में पहना जाता है ये ज्यादातर शुद्ध मूंगे की कंठी, चांदी की, शुद्ध मोतियों की, सोने की तथा सोना, मोती और मूंगों को मिलाकर बनी होती है।

कुछ मुख्य आभूषणों की तस्वीरें

मूंगा व् सोने की कंठी...............मूंगा मोती व् सोने की कंठी ––––––––––––तड़का

खानपान– भारत विविधताओं से भरा राष्ट्र है। यहाँ के प्रत्येक क्षेत्र और भागों में रहन–सहन, खानपान, आचार–विचार, रीति–रिवाजों में भिन्नता है। इस विविधता का मुख्य कारण प्रत्येक क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति, जलवायु, सांस्कृतिक आदान–प्रदान और ऐतिहासिक प्रभाव हैं। खाद्य परंपरा की भिन्नता का भी अपना इतिहास, भौगोलिक स्थिति, जलवायु और सांस्कृति है। हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र लाहौल का खानपान जनजातीय संस्कृति, जलवायु और वातावरण से गहराई से जुड़ा है। यहाँ के खानपान में ठंडे रेगिस्तानी मौसम और तिब्बती–बौद्ध समुदायों का प्रभाव है। यहाँ के स्थानीय फसलों जैसे जौ, आलू, राजमाह और स्थानीय जड़ी–बूटियाँ भी खानपान मुख्य आधार हैं। यहाँ के प्रमुख व्यंजनों में सातू, छति, उबला आलू, लोअड, नू , बोती, मारचू, दू– मार आदि प्रमुख है। नमकीन चाय, जिसे मक्खन चाय भी कहते हैं, जो यहाँ की दिनचर्या में खानपान का अटूट अंग है।

मुख्य खानपान जो रोजमर्रा में प्रयोग होता है –

सतू––––––––––––––––नमकीन मक्खन चाय ––––––––––––छति–––––––––––––––––––– लोअड

रहन–सहन – रहन–सहन का सीधा सम्बन्ध जीवन जीने का तरीका या जीवन शैली से है। इसमें किसी समाज विशेष की दैनिक जीवन, पहनावा, खान–पान, रहन–सहन और सामाजिक व्यवहार आता है। किसी समाज की जीवन शैली यह बताता है कि लोग किस तरह रहते हैं, क्या उनका खानपान है, उनके रीति–रिवाज, परम्पराएँ क्या हैं। त्यौहार और मेलों का भी यहाँ के लोगों के जीवन में विशेष स्थान है। हालडा, फागली, पौरी मेला, 15 अगस्त जातर आदि का यहाँ के लोगों के जीवन में विशेष महत्व है। त्रिलोकीनाथ मन्दिर, माता हडिम्बा, 18 नाग, देवी भोटी और नीलकंठ महादेव यहाँ के लोगों के लिए आस्था के केंद्र है। जो यहाँ के लोगों के जीवन का अटूट अंग है।

हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र लाहौल के समाज और लोगों का रहन–सहन यहाँ की संस्कृति, भूगोल, जलवायु से बहुत प्रभावित है। हिमाचल प्रदेश के इस जनजातीय समाज में हिंदू, बौद्ध, स्वांगल और वाल्ती रहते हैं। इसलिए जनजातीय समाज एक मिश्रित समाज है। सांस्कृतिक और धार्मिक भिन्नता ने यहां के समाज को भिन्न नहीं बनाया है। ये क्षेत्र और समाज सभी धर्मो और समुदायों में एकता, आस्था का संगम स्थान हैं। चंद्र–भागा संगम इसका जीता जागता प्रमाण है, जिस पर यहाँ के सभी समाजों का विश्वास है। यहाँ के लोगों के रहन–सहन पर यहाँ के भूगोल और वातावरण का प्रभाव अधिक देखने को मिलता है। कठिन भोगोलिक स्थिति और अधिक ठंड के कारण सर्दियों में यहाँ के लोगों का जीवन गाँव व् घरों तक ही सीमित हो जाता है। पर यहाँ के लोग उस समय का सदुपयोग करते हैं। यहाँ सर्दियों में मुख्य काम ऊन कातना होता है, जिसमें मुख्य भूमिका औरतें ही निभाती हैं, परंतु ऐसा नहीं है कि पुरुष इस कार्य से अनजान है। पट्टी और दोहडू इत्यादि बुनने का काम भी इन्हीं दिनों पुरुषों और महिलाओं दोनों ही के द्वारा किया जाता है।

गर्मियों में यहां यहाँ के लोग खेती–बाड़ी का काम होता है। पिछले कुछ दशकों से यहाँ बागवानी का काम भी शुरू हुआ है। बागवानी यहाँ के लोगों के आय का अब एक और साधन के रूप में उभरा है, इसके साथ ही पर्यटन के क्षेत्र में भी अब जनजातीय क्षेत्र लाहौल विकसित हो रहा है, जिस कारण यहाँ के लोगों के रहन–सहन में अब व्यस्तता देखने को मिल रही है।

निष्कर्ष : इस तरह स्पष्ट है कि हिमाचल प्रदेश का जनजातीय क्षेत्र लाहौल अपनी अलग विशेषताओं, समृद्व संस्कृति, सामाजिक एकता और सामाजिक सामंजस्य का एक अटूट उदहारण है। यह सनातन भारत की अनेक संस्कृतियों का संगम, धार्मिक आस्था के समन्वय का केंद्र भी है। महत्वपूर्ण यह है कि यहाँ के लोगों की वेशभूषा, रहन–सहन और परम्पराएँ यहाँ के प्राचीन अस्तित्व को जीवित रखती है। यह भी प्रशंसनीय है कि आज के विकास की दौड़ में भी यहाँ का समाज अपनी प्राकृतिक जीवन शैली को महत्व देता है और उस पर गुर्व करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि –

1. सुनीता, रविन्द्र सिंह, हिमाचल प्रदेश के जनजातीय समुदाय इतिहास, संस्कृति और संचार, अपिकल बुक एजेंसी, 2025.

2. राम नाथ साहनी, Lahoul the Mystery Land of the Himalya, इंडस पब्लिशिंग कंपनी, 1994.

3. सुनीता, विविधता आधारित बोलियों क्षेत्र लाहौल, Shodh Drishti (An International Peer Reviewed Refereed Research Journal) Vol-13 No- 11-1 November 2022.

4. हरिकृष्ण मिट्ठू, अनुवादक (नरेश नदीम) हिमाचल प्रदेश, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, 2001.

5. सुनीता, A Glimpses of tribal Area of Lahoul] Shree Kala Prakashan] 2021-

– सहायक आचार्य संगीत

राजकीय महाविधालय पनारसा (मंडी) E-mail-id : googooarohi@gmail-com

हृदय से हृदय तक : केरल की अविस्मरणीय यात्रा

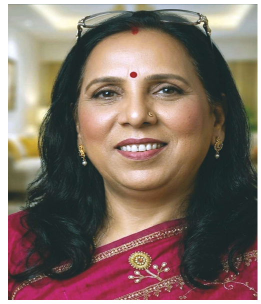

बिंदु सूर्यवंशी

किसी भी यात्रा की सफलता केवल तय की गई दूरी से नहीं, बल्कि उन आत्मीय संबंधों से मापी जाती है, जो उस यात्रा के दौरान बनते हैं। हिमाचल प्रदेश से केरल तक की यह शैक्षिक एवं सांस्कृतिक यात्रा मेरे लिए केवल एक कार्यक्रम नहीं थी, बल्कि जीवन का ऐसा अनुभव बन गई, जिसे शब्दों में पूरी तरह समेट पाना कठिन है।

सबसे पहले मैं राजकीय महाविद्यालय की आदरणीय प्राचार्या डॉ. हेमलता का हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके विश्वास, मार्गदर्शन और निरंतर प्रोत्साहन के कारण हमें इस अद्‌भुत अवसर का लाभ मिला। उनका सहयोग हर कदम पर हमारी शक्ति बना रहा। साथ ही मैं निर्मला कॉलेज की आदरणीय डॉ. सुजीता मैम, कॉलेज प्रशासन, सभी प्राध्यापकों, कर्मचारियों एवं विद्यार्थियों के प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने हमें अतिथि नहीं, बल्कि अपने परिवार का सदस्य मानकर जिस आत्मीयता, सम्मान और प्रेम से अपनाया, वह जीवनभर मेरी स्मृतियों में अंकित रहेगा।

जब हम पहली बार निर्मला कॉलेज पहुँचे, तभी से ऐसा अनुभव होने लगा कि हम किसी अपरिचित स्थान पर नहीं, बल्कि अपने ही घर आए हैं। स्वागत की मधुर मुस्कानें, पुष्पगुच्छ, स्नेह से भरे शब्द और अपनत्व से भरा वातावरण मन को छू गया। उस क्षण यह अनुभव हुआ कि सच्चे संबंधों के लिए भाषा का एक होना आवश्यक नहीं होता, भावनाएँ स्वयं अपना मार्ग खोज लेती हैं।

इस यात्रा का सबसे सुंदर पक्ष सांस्कृतिक आदान-प्रदान रहा। हमारे विद्यार्थियों ने हिमाचल प्रदेश के बारहों जिलों की सांस्कृतिक विविधता को एक मंच पर साकार किया। मंडी की लुड़ी, कुल्लू की नाटी, लाहौल का लोकनृत्य, चंबा की लोक-संस्कृति और शिमला क्षेत्र की महासूवी नाटी ने पूरे सभागार को मंत्रमुग्ध कर दिया। अधिकांश दर्शक हमारी भाषा नहीं समझते थे, फिर भी संगीत की लय, ताल, भाव और प्रस्तुति की ऊर्जा ने भाषा की सभी सीमाएँ समाप्त कर दीं। तालियों की गूँज यह प्रमाण दे रही थी कि संस्कृति की अपनी एक सार्वभौमिक भाषा होती है, जिसे हर हृदय सहज ही समझ लेता है।

उसी प्रकार जब निर्मला कॉलेज के विद्यार्थियों ने मोहिनीयाट्टम, लोकनृत्य, पारंपरिक गीतों और केरल की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की मनोहारी प्रस्तुतियाँ दीं, तो ऐसा लगा मानो हम केवल कार्यक्रम नहीं देख रहे, बल्कि केरल की आत्मा से परिचित हो रहे हों। उनकी अनुशासित प्रस्तुति, विनम्रता और अपनी संस्कृति के प्रति सम्मान ने गहरा प्रभाव छोड़ा।

हमारे द्वारा हिमाचली टोपी, पारंपरिक मफलर और स्थानीय परिधानों के माध्यम से सम्मान प्रकट करना तथा बदले में वहाँ के शिक्षकों द्वारा हमें रेशमी शॉल ओढ़ाकर सम्मानित करना केवल औपचारिकता नहीं थी, वह दो संस्कृतियों के बीच प्रेम, सम्मान और विश्वास का जीवंत प्रतीक था। विशेष रूप से जब वहाँ के विद्यार्थियों और शिक्षकों ने हिमाचली टोपी एवं पारंपरिक आभूषण पहनकर मुस्कुराते हुए स्वयं को दर्पण में देखा, तब उनके चेहरों पर जो सहज प्रसन्नता थी, उसने यह विश्वास और दृढ़ कर दिया कि भारत की विविधाता ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति है।

केरल के पारंपरिक व्यंजनों का स्वाद भी इस यात्रा का अविस्मरणीय हिस्सा रहा। केले के पत्ते पर परोसा गया भोजन, मसालों की सौंधी सुगंध और प्रेम से किया गया आतिथ्य केवल स्वाद तक सीमित नहीं था, उसमें उस भूमि की संस्कृति और आत्मीयता भी समाहित थी।

तीसरे दिन केरल भ्रमण के दौरान ऐतिहासिक संग्रहालय का अवलोकन करने का अवसर मिला। वहाँ संरक्षित इतिहास, तत्कालीन महाराजा का सिंहासन, दरबार, प्रशासनिक कक्ष और अनेक ऐतिहासिक धारोहरों को देखकर ऐसा लगा मानों इतिहास स्वयं हमारे सामने जीवंत होकर खड़ा हो। इसके बाद समुद्र तट की ओर बढ़ते हुए विशाल सागर, उसकी अनंत लहरें, शीतल हवा और प्रकृति का अद्‌भुत विस्तार मन को भीतर तक छू गया। नौका-विहार और समुद्र तट पर बिताए वे पल आज भी स्मृतियों

में उसी ताजगी के साथ जीवित हैं।

किन्तु हर सुंदर यात्रा की तरह इस यात्रा का भी एक विदाई का क्षण आया। जब वापस लौटने का समय निकट आया, तो वातावरण अनायास ही भावुक हो उठा। जिन लोगों से कुछ ही दिनों पहले परिचय हुआ था, उनसे बिछड़ते समय ऐसा लग रहा था मानो वर्षों पुराने आत्मीय संबंध पीछे छूट रहे हों। विदा के समय नम आँखें, गले मिलते साथी और पुनः मिलने के वादे इस बात के साक्षी थे कि प्रेम और सम्मान से बने रिश्ते समय या दूरी के मोहताज नहीं होते। रात को एर्नाकुलम स्टेशन से जब हमारी ट्रेन हिमाचल की ओर चल पड़ी, तब खिड़की से पीछे छूटते केरल को देखते हुए मन बार-बार उसी धरती पर लौट जाने की इच्छा कर रहा था। ऐसा लग रहा था मानो समुद्र की लहरें हमें फिर आने का निमंत्रण दे रही हों। उस क्षण यह यात्रा केवल एक स्थान से दूसरे स्थान तक की यात्रा नहीं रह गई थी, यह हृदय से हृदय तक पहुँचने का एक अद्भुत सेतु बन चुकी थी।

आज जब उन दिनों को स्मरण करती हूँ, तो अनुभव होता है कि भारत की वास्तविक शक्ति उसकी विविधता में निहित एकता है। भाषा, वेशभूषा, खान-पान, रहन-सहन और भौगोलिक दूरियाँ कभी भी मनुष्यों को अलग नहीं कर सकतीं। प्रेम, सम्मान, सहयोग और आत्मीयता ही वे सूत्र हैं जो पूरे भारत को एक परिवार में बाँधते हैं। यह यात्रा मेरे लिए केवल एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि जीवन का अमूल्य संस्मरण, एक भावनात्मक अनुभव और 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' की भावना का सजीव साक्षात्कार है। मैं इस अविस्मरणीय अवसर के लिए पुनः आदरणीय डॉ. उरसेम लता, डॉ. सुजीता मैम, निर्मला कॉलेज के समस्त परिवार, अपने सभी सहकर्मियों, विद्यार्थियों तथा इस यात्रा से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति के प्रति हृदय की गहराइयों से धन्यवाद एवं आभार व्यक्त करती हूँ। विश्वास है कि यह यात्रा स्मृतियों में ही नहीं, बल्कि हमारे हृदयों में जीवनभर जीवित रहेगी।

- सहायक पुस्तकालय अध्यक्ष,

राजकीय महाविद्यालय, पनारसा, मण्डी।

Suresh, Manali

NIRMALA COLLEGE
NIRMALA
COLLEGE

राजकीय महाविद्यालय, पनारसा